नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक अखबार • वर्ष 7 अंक 9
अक्टूबर 2005 • 3 रुपये • 12 पृष्ठ

अनुराग पुस्तकालय एवं वाचनालय

"वामपन्थी" ट्रेड यूनियनों का 'भारत बन्द'

संघर्ष की एक और रस्म अदायगी

देशी-विदेशी पूँजी के लूटतंत्र के खिलाफ फैसलाकुन संघर्ष की तैयारी करो!

सम्पादक

बीते 29 सितम्बर को संप्रग सरकार की आर्थिक नीतियों के विरोध के नाम पर संसदीय वामपन्थी पार्टियों से जुड़ी ट्रेड यूनियनों ने भारत बन्द का आयोजन कर एक और रस्म अदायगी पूरी की। सार्वजनिक क्षेत्र के तमाम प्रतिष्ठानों के आम कर्मचारियों ने अपने केन्द्रीय नेताओं के आह्वान पर पहले की ही तरह एकजुटता दिखाई और बन्द को सफल बनाया। बैंक, बीमा, रेलवे, दूरसंचार, डाक–सभी विभागों में काम ठप्प रहा। लेकिन अब किसी को भी यह भ्रम नहीं रहा कि आधे-अधूरे मन से संघर्ष के नाम पर होने वाले इन अनुष्ठानों से सरकार नीतियों की दिशा बदल देगी। केन्द्र में पहले सत्तासीन रही सरकारों की तरह मौजूदा संप्रग सरकार भी अच्छी तरह समझती है कि उनके ये वामपन्थी सहयोगी आर्थिक नीतियों के खिलाफ कोई फैसलाकुन संघर्ष शुरू करने का न तो इरादा रखते हैं और न ही उनके अन्दर यह माद्दा रह गया है। भारत बन्द के दौरान उनके द्वारा सरकार को जारी की गयी चेतावनियाँ गीदड़-भभकियों के सिवा कुछ नहीं हैं।

भारत बन्द का आह्वान सीटू, एटक, एच.एम.एस., टीयूसीसी और ऐक्टू ने संयुक्त रूप से किया था, लेकिन रेलवे को छोड़कर, जहाँ अभी भी एचएमएस सबसे अधिक ताकतवर है, अधिकांश सार्वजनिक प्रतिष्ठानों में बन्द को सफल बनाने में सीटू-एटक की प्रमुख भूमिका रही जो संप्रग सरकार को समर्थन देने वाली पार्टियों माकपा और भाकपा से जुड़ी हैं। टीयूसीसी व ऐक्टू की सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों के कर्मचारियों के बीच मौजूदगी अभी भी सांकेतिक ही है। साम्प्रदायिक ताकतों को केन्द्र की सत्ता से बाहर रखने के नाम पर यूपीए सरकार को समर्थन देने वाली पार्टियों से जुड़ी यूनियनें 'भारत बन्द' करने के लिए आखिर क्यों मजबूर हुईं? वह भी ऐसे समय में जबकि समूची दुनिया के पूँजीवादी हलकों में अब यह बात मानी जा चुकी है कि भारत में पिछले डेढ़ दशक से लागू हो रहीं आर्थिक नीतियों की दिशा को उलटा नहीं जा सकता। इस मजबूरी के कारण बहुत साफ हैं।

दरअसल, जब मजदूर क्रान्ति की विचारधारा को छोड़कर कोई कम्युनिस्ट नामधारी पार्टी संसदीय या चुनावी रास्ते पर चल पड़ती है या दूसरे शब्दों में कहें तो जब कोई कम्युनिस्ट नामधारी पार्टी मजदूर वर्ग से विश्वासघात कर पूँजीपति वर्ग का विश्वासपात्र बनने का रास्ता चुन लेती है तो उसके सामने दोतरफा संकट पैदा हो जाता है। उसे मजदूर वर्ग के बीच भी विश्वसनीय बने रहना होता है और पूँजीपति वर्ग के बीच भी साख बढ़ाते जाना होता है। आज देश की संसदीय वामपन्थी पार्टियों के सामने यही दुहरा संकट है। उन्हें पूँजीपतियों का चहेता भी बनना है और मजदूरों का भरोसा भी नहीं खोना है। नई आर्थिक नीतियों के विरोध की सारी कवायद इसी सन्तुलन को बनाये रखने के लिए है क्योंकि जहाँ तक नीतिगत प्रश्न है, इन पार्टियों को भूमण्डलीकरण की आर्थिक नीतियों से कोई बुनियादी विरोध नहीं है। जो भी विरोध है वह इन नीतियों को लागू करने के तरीके व रफ्तार को लेकर है। अगर वास्तविक विरोध होता तो पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य मलेशिया और सिंगापुर जाकर विदेशी पूँजी को लुभाने का जतन नहीं करते। विदेशी पूँजी को लुभाने के लिए बुद्धदेव बाबू बेशर्मी से कहते हैं कि "उत्पादन, उत्पादकता और गुणवत्ता जैसे मुद्दे सिर्फ मैनेजमेण्ट का सिरदर्द नहीं हैं।" भूतपूर्व कम्युनिस्ट बन चुके बाबू मोशाय अब मजदूरों को पूँजीपतियों के शोषण के खिलाफ संघर्ष के लिए प्रेरित नहीं करते, वरन मेलमिलाप की बातें करते हैं और मजदूरों को यह कहकर डराते हैं –"मजदूरों को भी इस मामले में (उत्पादकता बढ़ाने के मामले में) हिस्सेदार बनना पड़ेगा, वरन उद्योग बैठ जायेंगे और रोजगार से हाथ धोना पड़ेगा।"

यह अनायास नहीं है कि प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह बुद्धदेव भट्टाचार्य से बेहद खुश हैं और उनसे सीखने की सलाह देते हैं। एक तरफ मेलमिलाप की ये बातें, विदेशी पूँजी को लुभाने के 'आयटम सॉंग' पेश करना और दूसरी ओर आर्थिक नीतियों के विरोध में 'भारत बन्द'। यह गन्दा पाखण्ड है, जो अपना जनाधार बचाने के लिए संशोधनवादी पार्टियों को (यानी भूतपूर्व हो चुकी कम्युनिस्ट पार्टियों को) करते रहना पड़ता है, नहीं तो उनकी राजनीति का शटर गिर जायेगा।

देश में नई आर्थिक नीतियों को लागू करने की शुरुआत के समय से ही ये पार्टियाँ विरोध के नाम पर यही पाखण्ड करती चली आयी हैं। कभी भी इन नीतियों के खिलाफ फैसलाकुन संघर्ष के लिए इन्होंने न तो कोई कारगर रणनीति बनाई और न ही देश के मजदूर वर्ग का आह्वान किया। देश की विशाल असंगठित कही जाने वाली मजदूर आबादी के बीच इन पार्टियों की यूनियनों की पकड़ तो नाममात्र की है लेकिन अगर ये पार्टियाँ सचमुच संघर्ष करना चाहती हैं तो

(पेज 8 पर जारी)

मजदूर हड़ताल करे तो गुनाह और पूँजीपति तालाबन्दी करे तो उसका हक?

यह गुण्डागर्दी नहीं तो और क्या है? आँकड़े बताते हैं कि कुल मिलाकर हड़तालों के मुकाबले तालाबन्दी से ज्यादा नुकसान हुआ है। चाहे इसे श्रम दिवसों के रूप में देखा जाय या कुल उत्पादन के रूप में। ये आँकड़े किसी मजदूर संगठन ने नहीं, बल्कि स्वयं सरकार ने प्रस्तुत किये हैं।

केन्द्रीय श्रम मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट (2004-05) कहती है कि वर्ष 2003 में हड़तालों की तुलना में तालाबन्दियों से नौ गुना ज्यादा श्रमदिवसों का नुकसान हुआ, जबकि वर्ष 2001 में यह तीन गुना था। इसी तरह के तथ्य अन्य स्रोतों से भी समय-समय पर आते रहे हैं जो यह बताते हैं कि मुनाफाखोरों की तानाशाही के चलते न सिर्फ उत्पादन को नुकसान पहुँचा है बल्कि आये दिन एक ही झटके में हजारों मजदूरों की रोजी-रोटी छीन ली जाती है।

मजदूर वर्ग की हड़तालों पर हायतौबा मचाने वाले लोग पूँजीपतियों द्वारा की जाने वाली तालाबन्दियों पर चुप्पी साध लेते हैं। कुछ समय के लिए तालाबन्दी या हमेशा के लिए कारखाना बंद कर देने की प्रक्रिया में मजदूरों के रोजगार के साथ खिलवाड़ अब आम हो गया है। मजदूरों की तरह कोई थैलीशाह इस जीवन-मरण के संकट से गुजरता हो, यह कभी सुनने में भी नहीं आता। पूँजीपति बाजार की गलाकाटू प्रतियोगिता और समय-समय पर आने वाली मंदी के चलते एक कारखाना बंद करते हैं तो दूसरा खोल लेते हैं या ज्यादा उत्पादन हो गया तो कुछ समय के लिए किसी भी बहाने से तालाबंदी कर देते हैं। तमाम श्रम कानूनों की धज्जियाँ उड़ाते हुए ये सब बेरोकटोक चलता रहता है।

(पेज 5 पर जारी)

भीतर के पन्नों पर

चीनी क्रान्ति की 56वीं वर्षगाँठ के अवसर पर वर्तमान सदर्भ और चीन की नवजनवादी क्रान्ति के जरूरी और बहुमूल्य सबक 6-7
न्यायपालिका की पक्षधरता किस ओर? 5
क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं की शिक्षा 9
इस व्यवस्था में जनता को न्याय नहीं 10
लोग लोहे की दीवारों वाले मकान में कैद हैं –लू शुन 11
कैटरीना ने बेनकाब किया पूँजीवाद का जनद्रोही चेहरा 12

तेल पूल घाटे का रोना और पेट्रोल-डीजल की मूल्य वृद्धि एक धोखा है

(विशेष संवाददाता)

जैसी कि उम्मीद थी केन्द्र की संप्रग सरकार ने कच्चे तेल के अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में मूल्य वृद्धि और तेल पूल घाटे का रोना रोते हुए एक बार फिर पेट्रोल व डीजल की कीमतों में वृद्धि कर दी है। यह कांग्रेस के नेतृत्व में व संसदीय वामपंथियों के समर्थन से चलने वाली संप्रग सरकार के डेढ़ वर्ष के शासन काल में छठवीं बार की बढ़ोत्तरी है। वैसे भाजपा नेतृत्व वाली पूर्ववर्ती राजग सरकार के शासन काल में यह वृद्धि छह बार पहले भी हो चुकी है।

तेल का पूरा खेल ही एक धोखा है। वैसे भी वैश्विक धरातल पर सबसे अधिक होड़ तो तेल के स्रोतों पर कब्जे की ही है। इराक युद्धों से लेकर अफगानिस्तान युद्ध तक तो सभी तेल की ही देन हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर तेल की कीमतों में वृद्धि की मूल वजह युद्ध और लुटेरी रणनीति ही है।

लेकिन यहाँ हम तेल के इस खेल में भारतीय शासक वर्ग की धोखाधड़ी की बानगी प्रस्तुत करेंगे। 1990 में जब पहली बार इराक युद्ध हुआ था उस वक्त चन्द्रशेखर भारत के प्रधानमंत्री थे। उस वक्त युद्ध का कारण बताते हुए पेट्रो प्रोडक्ट में डेढ़ से दो गुने तक की संकटकालीन वृद्धि हुई थी, यह कहते हुए कि युद्ध के बाद कीमतें कम कर दी जायेंगी। और पेट्रोल की कीमत 10 रुपये लीटर से सीधे 16 रुपये लीटर हो गयी थी। वक्त गुजरता गया और घटने की जगह कीमतें लगातार बढ़ती रहीं।

आज उत्तरांचल में 45.26 रुपये लीटर पेट्रोल की कीमत हो गयी है। 3 जून 1998 को तत्कालीन भाजपा नेतृत्व वाली राजग सरकार ने दिल्ली में पेट्रोल की कीमत 23.94 रुपये और डीजल की कीमत 9.87 रुपये प्रति लीटर कर दी थी।। जनवरी, 2004 को राजग सरकार द्वारा अन्तिम वृद्धि के बाद दिल्ली में पेट्रोल और डीजल की कीमत क्रमशः 33.71 रुपये और 21.74 रुपये प्रति लीटर हो गयी, जो वर्तमान में संप्रग सरकार द्वारा वृद्धि के बाद दिल्ली में क्रमशः 43.49 रुपये और 30.40 रुपये प्रति लीटर पर पहुँच गयी। इस सबके बावजूद सरकार का अभी तेल पूल

(पेज 8 पर जारी)

आपस की बात

हम ऐसे गुलाम हैं जो गुलामों पर डण्डे बरसाते हैं

मैं बिगुल का पिछले दो वर्षों से नियमित पाठक हूँ। मैंने आज तक कोई लेख 'आपस की बात' कॉलम में नहीं दिया था। लेकिन आज एक लेख लिखने के लिए मजबूर हो गया हूँ और मेरे मजबूर होने का कारण 'आपस की बात' कॉलम ही है। सुबह साढ़े आठ बजे से मैं काम ढूंढने के लिए निकला हुआ था लेकिन मुझे कहीं काम नहीं मिला और मैं हार-थक कर एक बजे के आस-पास अपने रूम पर वापस लौटा। इतने में मेरी नजर बिगुल अखबार की पुरानी फाइल पर पड़ी। मैं इस फाइल को उठाकर एक-एक करके हर अखबार को पढ़ने लगा। अक्तूबर 1996 के अखबार में 'आपस की बात' कॉलम में एक ऐसा लेख था जिसकी हैडिंग पढ़ते ही मुझे एक झटका-सा लगा जैसे कोई कह रहा हो कि सो क्यों रहे हो यह तो जागने का समय है। इस लेख को बड़े ध्यान से पढ़ा, हेडिंग थी 'हम ऐसे गुलाम हैं जो गुलामों पर डण्डा बरसाते हैं' इतना पढ़ते ही आप समझ गए होंगे कि यह कौन लिख सकता है। मैं भी समझ गया था कि कोई पुलिसवाला ही हो सकता है लिखने वाले का नाम पढ़ना चाहा तो लिखा था—उ.प्र. पुलिस का एक सिपाही। सिपाही जी के इस लेख को दोबारा से अखबार में छापने की बेहद जरूरत समझता हूँ। इसलिए इसे फिर दोहरा रहा हूँ। "मैं उ.प्र. पुलिस का एक सिपाही हूँ एक ऐसी नौकरी करता हूँ जिसे लोग नफरत से देखते हैं। मानता हूँ पुलिस महकमे में बड़ा भ्रष्टाचार है। पर हम कुछ नहीं कर सकते। हम भी किसानों और मजदूरों के लड़के हैं पर अपना पेट भरने के लिए उन्हीं पर डण्डे भांजते हैं। यहीं नहीं, हममें से ईमानदारों को भी पेट पालने के लिए ऊपरी कमाई करनी पड़ती है। खाली तनख्वाह से बच्चों का पेट पालना सम्भव नहीं है। मैं बी.ए. पास हूँ पर साहबों के घर दाई-नौकर की तरह बेगारी करनी पड़ती है और गालियाँ भी सुननी पड़ती हैं। उनके लिए सौदे भी पटाने पड़ते हैं और ट्रक-टैक्सी वालों से वसूली भी करनी पड़ती है। बड़ी घुटन होती है पर कुछ नहीं कर सकते। हमारी यूनियन भी कोई नहीं है, जो हमारी माँग उठाए। पुलिस लाईन में हमारी जिन्दगी थाने में हिरासत में रखे जाने वाले लोगों से बदतर है हम लोग ऐसे गुलाम हैं जो गुलामों पर डण्डे बरसाते हैं। अभी अखबार में पढ़ा कि एक होम गार्ड ने गरीबी से तंग आकर अपने परिवार के छह जनों को गंगानहर में फेंक कर खुद भी आत्महत्या कर ली। उसके पास अपने बच्चे के इलाज के पैसे भी नहीं थे। विभाग से मिलने वाला भत्ता भी तमाम कोशिशों के बाद उसे समय पर नहीं मिला। तब उसने यह भयंकर कदम उठाया। इसी हालत में पुलिस के तमाम जवान रह रहे हैं। मैं सोचता हूँ आखिर रास्ता क्या हो? आज सभी चुप हैं पर कभी न कभी तो आग भड़केगी ही। इतनी लूटपाट, भ्रष्टाचार के बावजूद और इतनी महंगाई, गरीबी, बेरोजगारी और घनी-गरीबी की बढ़ती खाई के बाद भी सब कुछ ऐसा ही चलता रहेगा यह तो हो ही नहीं सकता। 'बिगुल' से उम्मीद बंधती है कि यह गरीबों को मुक्ति का रास्ता दिखाएगा। यह अखबार अगर लगातार निकलता रहा तो मजदूर वर्ग की एक नये इंकलाब की तैयारी के लिए बड़ी भूमिका निभाएगा।"

साथियो, कोई पुलिस वाला यह सच बोल रहा है कि हम ऐसे गुलाम है जो गुलामों पर डण्डा बरसाते हैं। मेरे यह एकदम नई बात है क्योंकि मैं पुलिस वालों को सच के नाम पर गूंगे समझता हूँ। परन्तु इस पुलिस वाले ने सच बोलकर, न्याय की माँग करके और अपनी यूनियन होने की बात कहकर मुझे हैरान ही कर दिया है। वास्तव में उनकी यूनियन होनी चाहिए। और अपनी बदबूदार जिंदगी की हालत में सुधार करने के लिए उन्हें माँग उठानी चाहिए। विद्रोह करना चाहिए सत्ता के खिलाफ। इस बात को उन्हें गहराई से सोचना चाहिए कि आखिर वे जिनके बेटे हैं उन्हीं पर डण्डा क्यों चलाएं। और इस लेख को दोबारा छापने की जरूरत इसलिए समझता हूँ कि इस पुलिस वाले साथी की बात दबी नहीं रहनी चाहिए। जिसे पढ़कर दूसरे पुलिस वाले साथी भी कुछ शिक्षा लें और हर आम आदमी के दिल में पुलिस के प्रति नफरत को मिटा दें। इस पुलिस वाले साथी ने सच बोलकर और न्याय की माँग कर तथा अपनी यूनियन होने की बात कहकर मेरा दिल ही जीत लिया। यह पुलिस वाला धन्यवाद का पात्र है।' और साथ में यह बिगुल भी धन्यवाद का बेहद पात्र है जो खुद भी सच बोलता है और सच के नाम पर गूंगों से भी सच कहलवा लेता है।

— भूपेन्द्र सिंह, नोएडा

जोशीले नौजवानों का बिगुल

कुछ रोज पूर्व मैं बाजार से अपने बेटे को सामान दिलाकर लौट रहा था। तभी चार जोशीले नौजवानों की आवाज ने मुझे रुकने को मजबूर कर दिया। ये नौजवान गले में तख्ती डाले, हाथों में 'बिगुल' की प्रतियाँ उठाये लोगों को 'बिगुल' खरीदने के लिए प्रेरित कर रहे थे। मैंने भी मूल्य चुकाकर एक प्रति ली। इन नौजवानों का अद्भुत रूप व आवाज अभी भी मेरे मस्तिष्क में है। मेरे विचार से बिगुल को औद्योगिक क्षेत्रों में ज्यादा रिस्पांस मिलेगा। 2 तथा 5 बजे के आसपास वर्कर फैक्ट्री छोड़ते हैं। इसमें वर्करों से सम्बन्धित समस्याएँ समाधान भी होनी चाहिए। अगर आप की अनुमति मिलेगी तो कुछ न्यूज मैं भेज दिया करूँगा।

—सुनील कुमार शर्मा
नई बस्ती, ग़ाजियाबाद

जब तक मानव-मानव का
सुखभाग नहीं सम होगा,
शमित न होगा कोलाहल
संघर्ष नहीं कम होगा!
—दिनकर

आठ घण्टे से ज्यादा समय का पैसा मालिक की जेब में

साथियो, मैंने जुलाई 2005 का अंक पढ़ा। साथी नवकाश दीप लिखते हैं, 'गर्मी नहीं पूंजीपति पी जाते हैं मजदूरों की कमाई', साथियो इतना ही नहीं आए दिन मार-पीट भी करते हैं अगर कोई मजदूर अपनी मजदूरी बढ़ाने या अपना पीस रेट बढ़ाने के बारे में अगर कारखाने के दो चार मजदूरों से बात करते हैं तो मालिक को पता लगता है तो मालिक सोचता है इतना दिन हो गया अब तक कोई मजदूर मजदूरी पीस रेट बढ़ाने के लिए एक-दूसरे मजदूरों से बात नहीं किया। अक्सर ऐसे मजदूरों को काम से हाथ धोने पड़ते हैं। और बात रही लूट की तो मालिक तो हमेशा बैठा सोचता रहता है कि कौन पीस का रेट ज्यादा हो गया कौन मजदूर ज्यादा पैसा उठाया है। मालिक को चिन्ता लगी रहती है। और मजदूर अपनी चिन्ता में रहता है 150 रुपया की दिहाड़ी पड़ता है तो मजदूर 1 से डेढ़ घण्टा ज्यादा समय लगाकर 200 रुपया बनाता बस क्या? मालिक सोचा इसने 50 रुपया ज्यादा हमसे लिया 50 रुपया काटो बस पीस रेट कम कर देता है अब वही मजदूर 150 का भी काम नहीं करता। होता ऐसा है मैं जिस कारखाने में काम करता हूँ उसमें वजन पर पैसा मिलता है यानी हाजरी में, हुआ ऐसा नया डिजाईन आया मालिक उसका रेट (32) रुपया किलो रखा अब बनाया, 800-900 सौ का दिहाड़ी लगाया। अब मालिक सोचा इतना पैसा दूसरा महीना उस माल में 15 रुपया किलो रेट हुआ। अब वही मजदूर 15 और 20 किलो से कभी ज्यादा माल नहीं बनाया। और मेहनत भी ज्यादा करना पड़ता है। क्या हुआ, मालिक को दोहरा फायदा हुआ। एक तो माल जल्दी बना पैसा भी कम लगा। इधर मजदूर को मेहनत भी ज्यादा पैसा भी कम।

इसलिए साथियो हम लोग सूझ-बूझ समझदारी से काम लें। 100 के जगह 150 भी होगा तो हमारी परेशानी उतनी ही है मिलना 100 ही है इसलिए हम समय से काम करे और बाकी समय ऐसा करे कि हमारी लूट करने वाले को खत्म कर सके। आने वाले दिन में अपने बच्चों को लूट से बचा सके।

— निराला, लुधियाना

दुनिया के मज़दूरो, एक हो!

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और जिम्मेदारियाँ

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी- अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

राहुल फाउण्डेशन का महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

बोल्शेविक पार्टी का इतिहास

जे.वी. स्तालिन द्वारा लिखित और सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की केन्द्रीय समिति के एक आयोग द्वारा सम्पादित यह पुस्तक सोवियत संघ में 1938 में छपी थी। यह पुस्तक दुनियाभर के कम्युनिस्टों के लिए एक अनिवार्य पाठ्यपुस्तक रही है, और आगे भी रहेगी। यह पुस्तक कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में मजदूर वर्ग द्वारा समाजवाद के लिए सफल संघर्ष और समाजवादी निर्माण के अनुभवों और सबकों का निचोड़ प्रस्तुत करती है। यह पुस्तक हमें सामाजिक विकास के नियमों के ज्ञान से लैस करती है तथा पूँजी और श्रम के बीच जारी विश्व ऐतिहासिक महासमर में समाजवाद की अपरिहार्य विजय में विश्वास पैदा करती है। पृ. 360 मूल्य : 80 रुपये

प्रतियों के लिए जनचेतना के केन्द्रों से संपर्क करें (पते के लिए देखें नीचे)

नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ
दिल्ली सम्पर्क : 29, यू.एन.आई. अपार्टमेण्ट, जीएच-2, सेक्टर-11, वसुंधरा-गाजियाबाद-201010
ईमेल : bigul@rediffmail.com

मूल्यः एक प्रति—रु. 3/- वार्षिक—रु. 40.00 (डाक खर्च सहित)

बिगुल

'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध :
1. डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
2. जनचेतना स्टाल, काफी हाउस बिल्डिंग, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे तक)
3. जाफरा बाजार, गोरखपुर-273001
4. 989, पुराना कटरा, यूनिवर्सिटी रोड, मनमोहन पार्क, इलाहाबाद
5. जनचेतना सचल स्टाल (ठेला) चौड़ा मोड़, नोएडा (शाम 5 से 8)

मेहनतकश साथियों के लिए कुछ ज़रूरी पुस्तकें

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा —लेनिन 5/-
मकड़ा और मक्खी —विलेहेम लीब्कनेख्त 3/-
ट्रेड यूनियन काम के जनवादी तरीके —सर्जी रोस्तोवस्की 3/-
अनवज्वर है सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं 10/-
समाजवाद की समस्याएं, पूँजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति 12/-
क्यों माओवाद? 10/-
बुर्जुआ वर्ग पर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में 5/-
मई दिवस का इतिहास 5/-
अक्टूबर क्रान्ति की मशाल 12/-
पेरिस कम्यून की अमर कहानी 10/-

बिगुल बिक्रेता साथी से माँगें या इस पते पर 17 रु. रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर मनीआर्डर भेजें : जनचेतना, डी-68, निराला नगर, लखनऊ-226020।

इधर मौत का अट्टहास, उधर जश्न-ए-बहार

(बिगुल संवाददाता)

गोरखपुर। इतिहास में हम एक नीरो को जानते हैं जो रोम का सम्राट था, जो धू-धू करते रोम के बीच बेफिक्र हो बाँसुरी बजा रहा था। लेकिन आज के हिन्दुस्तान में तो इतने नीरो पैदा हो चुके हैं कि उनकी गिनती सम्भव नहीं। आये दिन देश में प्राकृतिक आपदाएँ, महामारियाँ, सामाजिक त्रासदियाँ मौत का मंजर रचती रहती हैं लेकिन सत्ता में बैठी जमातें पंचतारा पार्टियों में ऐश्वर्य और विलासिता का रास रचाती रहती हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश में अभी भी इंसेफेलाइटिस का कहर जारी है। हजारों बच्चे अपनी जिन्दगियाँ गँवा चुके हैं, लेकिन प्रदेश की सरकार के मंत्रियों के ठाठ और ऐशो-आराम, भोग-विलास में रत्तीभर भी कमी नहीं दिखाई पड़ती है। देशी-विदेशी मेहमानों के स्वागत में पंचतारा पार्टियाँ जारी हैं। और अगर विदेश से बिल क्लिंटन जैसा कोई 'खास' मेहमान आये तो फिर बात ही क्या! खुद प्रदेश सरकार के मुखिया मुलायम सिंह इस विदेशी मेहमान की आवभगत में बिछ गये और सरकारी खजाना खोल दिया।

बीते सात सितम्बर को उत्तर प्रदेश विकास परिषद के आमंत्रण पर पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिण्टन राजधानी लखनऊ पधारे। क्लिण्टन की यात्रा का उद्देश्य बताया गया कि महाशय उत्तर प्रदेश के औद्योगिक विकास पर चर्चा करने के लिए आये हैं। यह चर्चा लखनऊ के एक पंचतारा होटल में कड़ी सुरक्षा व्यवस्था के बीच तकरीबन एक घण्टे तक चली। इस चर्चा में बिल क्लिण्टन के साथ राज्य सरकार की प्रतिनिधि के बतौर मुख्य सचिव नीरा यादव, उ.प्र.विकास परिषद के अध्यक्ष अमर सिंह, रिलायंस समूह के अनिल अंबानी, आईसीआईसीआई बैंक के एम वी कामथ, फिल्म अभिनेता और उत्तर प्रदेश के ब्राण्ड अम्बेसडर अमिताभ बच्चन और अन्य कई प्रमुख उद्योगपति शामिल थे। क्लिण्टन के साथ भी कई अमेरिकी उद्योगपति, अधिकारी और सुरक्षाकर्मी आये थे।

प्रदेश के विकास पर इस पंचतारा औपचारिक चर्चा के बाद बिल क्लिण्टन के स्वागत में मुख्यमंत्री मुलायम सिंह यादव ने अपने आवास पर रात्रिभोज दिया। इसके लिए मुख्यमंत्री आवास के लान में ही पाँचतारा सुविधाओं से लैस एक वातानुकूलित पण्डाल बनाया गया जिसमें एक करोड़ रुपये से अधिक खर्च हुए। भोज के पहले बिल क्लिण्टन के मनोरंजन के लिए एक सांस्कृतिक कार्यक्रम भी पेश किया गया। इस कार्यक्रम में भी देश के चुनिन्दा उद्योगपति, फिल्म जगत की मशहूर हस्तियों के साथ वरिष्ठ प्रशासनिक एवं पुलिस अधिकारी भी मौजूद थे। मौजूद प्रमुख लोगों में मुख्यमंत्री के मंत्रिमण्डलीय सहयोगियों और वरिष्ठ अफसरों के अलावा अमर सिंह, अमिताभ बच्चन, जया बच्चन, अभिषेक बच्चन, हेमा मालिनी, राज बब्बर, जया प्रदा, अनिल अंबानी, सुब्रत राय के साथ ही नेता प्रतिपक्ष लालजी टण्डन भी मौजूद थे।

इस रात्रि भोज के अवसर पर मुलायम सिंह यादव और अमर सिंह के भाषण पर गौर कीजिए। मुलायम सिंह ने कहा कि बिल क्लिण्टन मानवीय खूबियों से युक्त एक विश्व नेता हैं। पीड़ित मानवता के कल्याण के लिए उनके मन में बहुत कुछ करने की तमन्ना है। अमर सिंह के वचनामृत देखिये–'बिल क्लिण्टन ने इतनी दूर आकर पूरे प्रदेश का मान बढ़ाया है। अमेरिकी साम्राज्यवादियों के एक नुमाइन्दे और सार्वजनिक रूप से अपनी लम्पटता को स्वीकार कर चुके व्यक्ति के बारे में प्रदेश की सरकार के मुखिया और नुमाइन्दे कसीदे पढ़ रहे हैं। इससे प्रदेश का मान बढ़ा है या प्रदेश की जनता का अपमान हुआ है। यह फैसला पाठक स्वयं करें।

जब प्रदेश सरकार की इस फिजूलखर्ची पर विपक्षी पार्टी के नेताओं ने कटघरे में खड़ा करना शुरू किया तो 'मैं नंगा तो तू भी नंगा' की तर्ज पर समाजवादी पार्टी ने केन्द्र सरकार पर तोहमत लगाते हुए कहा कि उसके मंत्री अब तक 122 करोड़ रुपये की चाय पी चुके हैं। चित्रकूट में पिछले दिनों सम्पन्न पार्टी के चार दिवसीय प्रशिक्षण शिविर में पार्टी की ओर से आमंत्रित जे.एन.यू. के प्रोफेसर आनन्द कुमार ने बाकायदा आँकड़े पेश किये। ये आँकड़े बिल क्लिण्टन के नवाबी अन्दाज में स्वागत और मरघट के बीच रास रचाने को तो जायज नहीं ठहरा सकते लेकिन अपने आप में आँखें खोलने वाले हैं।

आनन्द कुमार ने आँकड़ा दिया कि प्रधानमंत्री और उनके मंत्रियों के कार्यालय पर 2002-03 में चाय-पानी पर 74 करोड़ रुपये खर्च हुए थे जबकि 2003-04 में यह बढ़कर 122 करोड़ रुपये पहुँच गया। इसी तरह राष्ट्रपति के दफ्तर में यह खर्च 2002-03 में दस करोड़ था जो 2003-04 में बढ़कर साढ़े चौदह करोड़ तक पहुँच गया। उन्होंने यह भी आँखें खोलने वाला आँकड़ा प्रस्तुत किया कि नेताओं की सुरक्षा पर स्पेशल प्रोटेक्शन ग्रुप (एसपीजी) पर 2002-03 में 60 करोड़ रुपये खर्च हुए थे जो बढ़कर 2003-04 में 77 करोड़ रुपये तक पहुँच गया।

एक तरफ ये फिजूलखर्चियाँ दूसरी तरफ आम जनता को शिक्षा, स्वास्थ्य जैसी बुनियादी सुविधाओं को मुहैया कराने की बात आते ही सरकारें संसाधनों के संकट का रोना शुरू कर देती हैं और खर्चों में कटौती का राग अलापना शुरू कर देती हैं। देश की मेहनतकश जनता मरघट में रास रचाने वाली इस जमात का बोझ आखिर कब तक उठाती रहेगी?

न्यायपालिका की पक्षधरता किस ओर?

मज़दूर विरोधी फैसले दर फैसले

(बिगुल संवाददाता)

दिल्ली। पिछले दिनों देश के सर्वोच्च न्यायालय ने नियोजकों के पक्ष में दो और अहम फैसले सुनाये। 25 सितम्बर को तीन जजों की खण्डपीठ ने एक फैसले में कहा कि आपराधिक मामले में अदालत से बरी होने के बावजूद मनमानी करने वाले कर्मचारी को उसका सेवायोजक नौकरी से बर्खास्त कर सकता है। जबकि 28 सितम्बर को दो जजों की खण्डपीठ ने कहा कि यदि कोई कम्पनी बन्द हो जाती है तो कम्पनी के निदेशक मज़दूरों के वेतन भुगतान के लिए व्यक्तिगत तौर पर जिम्मेदार नहीं होंगे।

सुप्रीम कोर्ट का पहला फैसला सार्वजनिक क्षेत्र की तेल कम्पनी इण्डियन ऑयल के हल्दिया (पश्चिम बंगाल) स्थित रिफाइनरी कर्मचारी की याचिका पर था। उक्त कर्मचारी अपने अधिकारी के साथ बदसलूकी, मारपीट और धमकी देने के आरोप में बर्खास्त चल रहा था। इस मामले में वह फौजदारी अदालत से बाइज्जत बरी हो चुका था और इसी आधार पर उसने कम्पनी से अपनी बहाली की माँग की थी। लेकिन कलकत्ता उच्च न्यायालय की ही भाँति उच्चतम न्यायालय ने भी प्रबन्धन की कार्यवाही को उचित बताया और प्रबन्धन को नियमानुसार विभागीय और अनुशासनात्मक कार्यवाही करने की खुली छूट दे दी। जजों की खण्डपीठ ने अपने ही न्यायपालिका द्वारा कर्मचारी को आपराधिक मामले में बरी किये जाने को अलग तथा प्रबन्धन की कार्यवाही को अलग बताते हुए कहा कि विभागीय कार्यवाही का नजरिया अलग होता है, उसे वास्तविकता का ज्ञान होता है।

सवाल यह है कि यदि प्रबन्धन ने किसी मज़दूर या कर्मचारी को झूठे मामलों में फंसाया हो (जैसा कि प्रायः होता है) और वह अदालत से बरी हो जाता है तब यह कैसे साबित होगा कि सही क्या है और गलत क्या? *प्रबन्धन को वास्तविकता का ज्ञान होता है* (कोर्ट का यही मानना है) और भुक्तभोगी कर्मचारी! चूंकि वह मजदूर है तो उसे प्रबन्धन का निर्णय मानने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। न्यायालय का यह फैसला यही तो कह रहा है। तो फिर **न्यायपालिका किसके पक्ष में खड़ी है?**

अब दूसरे फैसले को लेते हैं। मध्यप्रदेश की जियाजी राव कॉटन मिल्स लिमिटेड की बंदी के बाद मजदूरों के वेतन भुगतान के मामले में मध्यप्रदेश के इंडस्ट्रीयल ट्रिब्यूनल ने मिल के निदेशक को वेतन भुगतान के लिए व्यक्तिगत तौर पर जिम्मेदार ठहराया था। मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय ने भी इस फैसले की पुष्टि की थी। लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने फैसले में कहा कि फैक्ट्री कानून के तहत यह आवश्यक था कि मालिक अधिसूचित करे कि विशेष रूप से कौन निदेशक भुगतान के लिए जिम्मेदार होगा। लेकिन यह व्यवस्था वेतन भुगतान के लिए नहीं है (यानी जिसका खून-पसीना लगा है उसके लिए जिम्मेदारी नहीं होगी)। वेतन के लिए नोटिस कम्पनी और प्रबन्धन को जारी किए जा सकते हैं न कि व्यक्तिगत रूप से निदेशकों को। इस प्रकार मजदूरों की गाढ़ी कमाई के करोड़ों रुपये हड़पने वाले निदेशक तो साफ बच गये और लुटे-पिटे मजदूर अपने वेतन से भी हाथ धो बैठे।

अब सवाल यह है कि मजदूरों के वेतन भुगतान का क्या होगा? न्यायाधीशों को लुटेरे निदेशक को बचाने की तो चिन्ता थी, लेकिन सैकड़ों मजदूरों के बारे में खामोशी रही। तो फिर **न्यायपालिका की पक्षधरता किस ओर है?**

यूँ तो पूँजीवादी व्यवस्था में शासनतंत्र के सभी अंगों के साथ न्यायपालिका भी मुनाफाखोरों की ही हिमायती होती है। लेकिन पहले एक झीना पर्दा था और कभी-कभी मजदूरों के हित में भी फैसले आ जाते थे। लेकिन उदारीकरण के पिछले डेढ़ दशक के दौरान न्यायपालिका का मजदूर विरोधी तेवर लगातार स्पष्ट रूप से सामने आता चला गया है। हड़ताल पर प्रतिबन्ध लगाने से लेकर तमाम फैसलों ने पहले ही श्रम की चादर हटा दी थी। लिहाजा वर्तमान के ये दोनो फैसले यदि सीधे-सीधे नियोक्ताओं के पक्ष में गये हैं तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं।

मजदूरों को उनका हक और उनके हक में फैसला तो मजदूरों के अपने राज्य में ही सम्भव है।

"बुर्जुआ कानून मकड़ी के जाल की तरह होते हैं। गरीबों और कमजोरों को तो वे अपने जाल में उलझाकर उनका दम निकाल लेते हैं जबकि अमीर और ताकतवर उसे आसानी से तोड़कर निकल जाते हैं।"

– एनार्किसस

अंधा, गूँगा, बहरा मीडिया

देश के सबसे बड़े अखबारों में से एक हिन्दुस्तान टाइम्स में से निकाले गये 362 मजदूरों की कानूनी लड़ाई अभी रफ्ता-रफ्ता चल ही रही थी कि हालात से परेशान होकर एक मजदूर महेन्द्रनाथ ने आत्महत्या कर ली। 30 वर्षीय महेन्द्रनाथ प्रोडक्शन विभाग में पिछले कुछ वर्षों से काम कर रहा था। पिछले वर्ष अक्टूबर में उसे भी 362 अन्य मजदूरों के साथ निकाला गया था। तभी से वह अपने छोटे-छोटे बच्चों वाले परिवार के साथ आर्थिक परेशानियों से निरन्तर जूझ रहा था।

दरअसल हिन्दुस्तान टाइम्स प्रबंधन ने पिछले वर्ष अक्टूबर में 362 कर्मचारियों को काम न होने का कारण बताकर निकाल दिया था। तभी से एम्पलाइज यूनियन के नेतृत्व में गेट पर धरना और कानूनी लड़ाई लड़ी जा रही थी। लेकिन पिछले एक वर्ष से चल रही इस लड़ाई से अब मजदूर नाउम्मीद होने लगे हैं। वजह आज के बदलते श्रम कानून, मालिकों की ऊँची पैठ और जुझारू नेतृत्व की कमी। घर की तंगियों से परेशान होकर तकनीकी रूप से कुशल मैकेनिक से लेकर वर्षों का अनुभव रखने वाले छोटा-मोटा काम करके किसी तरह अपने परिवार का पेट पालने पर मजबूर हो गये हैं।

इसी तरह की परेशानियों से तंग आकर महेन्द्रनाथ ने यह आत्मघाती कदम उठाया। गरीब की जिन्दगी ही नहीं बल्कि मौत भी दुखदायी होती है। उसकी मौत के बाद उसकी लाश को हिन्दुस्तान टाइम्स की कस्तूरबा गांधी मार्ग बिल्डिंग पर ले जाकर गेट जाम कर दिया गया। मजदूरों का कहना था कि अब फैसला हो ही जाना चाहिए। मालिकान ने पुलिस फोर्स से लेकर पूरे प्रशासनिक अमले को तैनात कर दिया। मजदूरों के अड़ जाने पर प्रबंधन ने यूनियन नेताओं को मामला सुलझाने का झूठा वायदा करके धरने को रफा-दफा करा दिया। परन्तु मामला अभी तक जस का तस है।

मालिकों, सरकारी अमले, श्रम कानूनों का मजदूर विरोधी चरित्र तो समझ में आता है। लेकिन अपने को गर्व के साथ लोकतंत्र का चौथा खंभा कहने वाला प्रेस का भी चुप्पी साध लेना हैरानी पैदा करता है। इस घटना को लगभग सभी इलैक्ट्रानिक चैनलों एवं प्रिन्ट मीडिया द्वारा कवर किया गया था। लेकिन बड़े शर्म का विषय है कि अगले दिन ज्यादातर चैनलों व अखबारों ने या तो खबर ही नहीं दी। और दी भी तो घुमा-फिराकर मात्र एक आम आत्महत्या के रूप में। साफ है कि पूँजीपतियों के हाथों में मीडिया से जनपक्षधरता की उम्मीद करना बेकार है। यह भी तथ्य है कि इनके मालिकों और सरकार द्वारा सूचनाओं पर अंकुश काफी व्यवस्थित ढंग से रखा जाने लगा है।

हालाँकि हिन्दुस्तान टाइम्स के मजदूरों का विश्वास अभी न्यायपालिका के फैसले पर टिका हुआ है। लेकिन बदलते परिवेश में न्यायपालिका के हालिया फैसलों जैसे हड़ताल को गैरकानूनी घोषित करने आदि से किसी बड़ी राहत की उम्मीद नहीं की जा सकती है।

– कपिल

"बुर्जुआ अखबार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मजदूरों के अखबार खुद मजदूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – लेनिन

बिगुल

मजदूरों का अपना अखबार है। यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता। बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए। सहयोग कूपनों के लिए बिगुल कार्यालय को लिखिए।

भयानक होती जा रही है अमीरी और ग़रीबी के बीच की खाई

समृद्धि के शीर्ष पर बैठे साम्राज्यवादी देशों में भी बेरोजगारी और अमीरी-गरीबी के बीच की खाई बहुत तेजी से बढ़ रही है। एक रिपोर्ट के अनुसार अमेरिका में एक करोड़ बीस लाख लोगों को अपने अगले वक्त के भोजन की चिंता हमेशा बनी रहती है। जबकि ब्रिटेन की आबादी का पाँचवा हिस्सा (जिनमें ज्यादातर युवा हैं) गरीबी रेखा के नीचे का जीवन जी रहे हैं।

● 'एलिजाबेथ फिन केयर' नामक एक ब्रिटिश संस्था के अनुसार ब्रिटेन में आबादी का बीस फीसदी भाग (सवा करोड़ लोग) गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन कर रहे हैं। इनमें 88 लाख व्यस्क हैं। लगभग 39 लाख की वह आबादी है जिनके काम करने की उम्र है लेकिन बेकारी के चलते वे बमुश्किल गुजर-बसर कर रहे हैं। ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के समृद्धि के मीनारों के पीछे की यह हकीकत है।

● बाल विश्व सम्मेलन में प्रस्तुत रिपोर्ट के अनुसार दुनिया का करीब 10 से 15 अरब डालर दो से तीन दिन का सैन्य खर्च है। रिपोर्ट के अनुसार इससे कम धनराशि में लगभग 11 करोड़ 50 लाख बच्चों की साल भर की पढ़ाई का खर्च पूरा हो सकता है।

● अमेरिका ने इराक पर हमले में 87 अरब डॉलर से अधिक खर्च किया है जबकि संयुक्त राष्ट्र के अनुसार इससे आधी से कम राशि में पृथ्वी के हर निवासी को स्वच्छ जल, पर्याप्त भोजन, सफाई की सुविधाएँ और बुनियादी शिक्षा प्रदान की जा सकती है।

● दुनिया के सबसे धनी देशों की बीस प्रतिशत जनसंख्या और सबसे गरीब देशों की उतनी ही जनसंख्या की आय का अनुपात 1960 में 30 पर एक था जो 1995 में 74 पर एक हो गया। जबकि नीचे की 80 फीसदी की आय के बीच का अन्तर तो अतुलनीय है।

● 'पॉपूलेशन रेफरेंस ब्यूरो' की 2005 की विश्व जनसंख्या डाटाशीट के अनुसार विश्व के 53 फीसदी लोग महज दो डॉलर से भी कम में अपना दिन काटने पर मजबूर हैं। पूर्वी एशिया में 44 फीसदी, दक्षिण पूर्व एशिया में 47 फीसदी और सहारा अफ्रीका में 75 फीसदी लोग इस स्थिति में गुजर-बसर कर रहे हैं।

● बाल श्रम सम्मेलन की रिपोर्ट के मुताबिक विकासशील देशों के करीब तीन अरब लोग रोज दो डॉलर से भी कम की कमाई कर पाते हैं। इनमें से 50 फीसदी ऐसे हैं जिनकी रोजाना की आय एक डालर (48 रुपये) से भी कम है।

● बैंकॉक से जारी 'प्लान' नामक संस्था की रिपोर्ट

बोलते आंकड़े... चीखती सच्चाइयां...

की अनुसार एशिया के एक अरब 27 करोड़ बच्चों में से तकरीबन आधे बच्चे गरीबी में जीवन जी रहे हैं, जिन्हें भरपेट भोजन, साफ पेयजल, चिकित्सा सुविधा और आवास नसीब नहीं है। रिपोर्ट के अनुसार 18 साल से कम उम्र के 60 करोड़ बच्चे इन बुनियादी मानवीय जरूरतों से महरूम हैं। एशिया में यह संख्या लगातार बढ़ती जा रही है।

● एक तरफ देश और दुनिया के पैमाने पर निजी क्षेत्र के मंहगे स्कूल-कॉलेज खुलते जा रहे हैं, सरकारी कॉलेजों-विश्वविद्यालयों में - विशेष रूप से मेडिकल-इंजीनियरिंग-मैनेजमेंट-बी.एड्.-लॉ आदि की फीसें बेइन्तहां बढ़ती जा रही हैं, दूसरी तरफ एक भारी आबादी आज भी स्कूलों का मूंह तक नहीं देख पा रही है अथवा बीच में ही पढ़ाई छोड़ने पर मजबूर हो जाती है।

● बाल विश्व सम्मेलन की रिपोर्ट के अनुसार विश्व में छः से चौदह साल के करीब 12 करोड़ बच्चों ने कभी स्कूल का मूंह नहीं देखा, इनमें 60 फीसदी लड़कियां हैं। 86 करोड़ वयस्क निरक्षर आबादी है जिसमें दो तिहाई महिलाएं हैं। 15 करोड़ बच्चे स्कूली शिक्षा पूरी करने से पहले विद्यालय छोड़ देते हैं जिनमें दो तिहाई लड़कियां हैं। स्कूल का मुंह न देख पाने या बीच में पढ़ाई छोड़ने वालों में सबसे बड़ी संख्या भारत में है। भारत में साढ़े तीन करोड़ बच्चों ने स्कूल तक नहीं देखा है।

● यूनीसेफ और ग्लोबल एक्शन वीक रिपोर्ट 2004 के अनुसार समुचित संसाधनों के अभाव में भारत में पांचवी तक पढ़ाई कर चुके 40 फीसदी बच्चे सामान्य ज्ञान की बातें तक नहीं जानते। 50 फीसदी लड़के व 58 फीसदी लड़कियां स्कूली शिक्षा बीच में ही छोड़ने को मजबूर होते हैं। यहां संसाधनों का आलम यह है कि उत्तार प्रदेश और बिहार जैसे राज्यों में 94 छात्रों पर एक शिक्षक है, जबकी राष्ट्रीय स्तर पर 47 बच्चों पर एक शिक्षक है। 30 फीसदी स्कूलों में ब्लैकबोर्ड तक नहीं है। 65.4 फीसदी विद्यालयों में मेज कुर्सी और दूसरे संसाधन नहीं हैं। ढेरों विद्यालयों में बच्चे घर से टाट पट्टी लेकर आते हैं। 93.3 फीसदी स्कूलों में लड़कियों के लिए अलग से शौचालय तक नहीं हैं। एक अन्य रिपोर्ट के अनुसार देश के कई ऐसे विद्यालय हैं जो एक या दो शिक्षकों के भरोसे चल रहे हैं। इन शिक्षकों का ज्यादा समय मध्यान्ह भोजन की व्यवस्था करने, पल्स-पोलियो, जनसंख्या आंकलन, मतदाता सूची बनाने, चुनाव ड्यूटी जैसे कामों में ही चला जाता है।

● यूनीसेफ और ग्लोबल एक्शन वीक रिपोर्ट 2004 के अनुसार भारत में एक करोड़ 26 लाख बच्चे बाल श्रम करने को मजबूर हैं।

लुधियाना में साइकिल इंडस्ट्री के मजदूरों का आंदोलन और संशोधनवादी ट्रेड यूनियनों का लिजलिजापन

मालिकों की दमन की नीतियों छँटनी, तालाबंदी के चलते और श्रम कानूनों के लागू न होने के कारण समय-समय पर वर्करों के आंदोलन फूटते रहते हैं और अपने हक लेने के लिए मजदूर जमात को जन्म से लेकर लम्बी लड़ाई लड़नी पड़ी है। तभी थोड़े-बहुत हक लिए जा सके हैं लेकिन पिछले काफी समय से सारे हक छीने जा रहे हैं। इसलिए देश भर में मजदूरों के स्वतःस्फूर्त ढंग से आंदोलन फूट रहे हैं।

साईकिल उद्योग में चल रहे संघर्षों की कड़ी में पवन साईकिल इंडस्ट्रीज के वर्कर भी पीछे नहीं रहे। पिछले दो साल से चले आ रहे हीरो साईकिल इंडस्ट्रीज के संघर्ष के बाद दूसरी फैक्ट्रियों के वर्करों ने भी अपने हक लेने के लिए लगातार संघर्ष किया और संगठन बनाने का प्रयास किया। जिसके नतीजे में हाईवे, रॉकमैन, के.डब्ल्यु. साईकिल इंडस्ट्रीज के वर्करों के संघर्ष हमारे सामने आये। लेकिन संशोधनवादी ट्रेड यूनियन की अगुवाई में होने के कारण साईकिल इंडस्ट्रीज के एक के बाद एक आन्दोलन असफल रहे और वर्करों को मालिकों की शर्तों पर काम पर जाना पड़ा।

ऐसा ही हाल एवन साईकिल इंडस्ट्रीज में हुआ। जिसमें हजार से ऊपर स्थायी और लगभग 400 वर्कर ठेके पर काम करते हैं। फैक्ट्री में वेतन श्रम कानून के अनुसार नहीं मिलता, ओवर टाइम भी सिंगल है, फण्ड बोनस वगैरा तो नाममात्र के बराबर हैं। बाकी मालिकों की गाली-गलौज, मनमानी, छँटनी जैसी तमाम ज्यादतियों का सामना करना पड़ता है और ज्यादातर फैक्ट्रियों की यही हालत है। पूरे इंडस्ट्रियल एरिया में श्रम कानून नाम की कोई चीज ही नहीं है। एवन में तो कई बार देखा भी गया है कि मालिकों के गुण्डों ने पुलिस की वर्दी पहनकर वर्करों की पिटाई भी की है।

इस बार भी वर्करों ने अपने हक लेने के लिए संगठन बनाने का प्रयास किया। इससे पहले साल की शुरुआत में हीरो के आन्दोलन से प्रभावित होकर जब अपने हक की बात एवन के वर्करों ने की तो मालिकों ने उन के एक प्रतिनिधि को दफ्तर बुलाकर चार्जशीट दे दी। जब वह अपना टिफिन उठाने डिपार्टमेंट में गया तो पता लगने पर वर्करों ने काम बन्द कर दिया और अगुआ साथी को बहाल करवाने के लिए धरना दिया, पर मालिक के गुण्डों ने पुलिस की वर्दी पहन कर वर्करों की जम कर पिटाई की और उस समय पुलिस भी यह सब देख रही थी। उल्टा वर्करों को अनुशासन भंग करने के केस बना कर जेल भेज दिया जिससे वर्करों का गुस्सा आन्दोलन का रूप धारण कर गया। अगुआ की कमी के कारण वर्कर सीपीआई(एम) के मजदूर संगठन सीटू के पास गये और अगुवाई करने का अनुरोध किया लेकिन सीटू ने धारा 144 लगी होने के कारण वर्करों को पीछे हटने को कहा और 15 दिन के लिए घर चले जाने का उपदेश दे डाला क्योंकि सीटू ने हमेशा ही वर्करों को पुलिस प्रशासन के विरोध में ना जाने देने का जैसे ठेका ले रखा है। इसलिए कहा गया कि धारा 144 तो केवल कोई नेता ही तुड़वा सकता है। वर्कर धारा 144 तोड़ने में सक्षम नही हैं। पर सत्तर-अस्सी के दशक में लुधियाना में श्रमिकों के कई सफल आंदोलन हुए थे और धारा 144 भी तोड़ी गई थी, पर अब वर्करों को 15 दिन रेस्ट की सलाह दी गई थी।

इस आन्दोलन का एक पक्ष ध्यान में लाना जरूरी है, जैसे काम बन्द करने के आह्वान पर वर्करों ने काम बन्द किया लेकिन उन्हींने जो परमानेन्ट थे। पर जो 400 से ऊपर ठेके पर भर्ती किये गए थे वे सब काम करते रहे। जिसके कारण वर्करों की ताकत कम पड़ गई क्योंकि काम तो चल ही रहा था। देखने को मिला है कि परमानेंट और ठेके वाले वर्करों के बीच भी खाई बनती जा रही है जिसके कारण एक सच्चा मजदूर संगठन बनाने के रास्ते में यह भी एक रुकावट है। इन कैजुअल (ठेके पर भर्ती) वर्करों को साथ लेकर ही अपने आन्दोलनों को सफल किया जा सकता है। कोई सच्चा मजदूर संगठन ना होने के कारण वर्कर को फिर इन दुकानदार 'ट्रेड-यूनियन' के चक्कर में ही पड़ना पड़ता है।

इन सारी बातों का प्रभाव एवन के आन्दोलन पर भी पड़ा। कुछ दिन बाद 31 जून को हुए मालिकों के पक्ष में समझौते को ना मानते हुए कई वर्कर काम पर नहीं गये और जो गये उनकी अन्दर जाकर स्टाफ के साथ झड़पें हुई और फैक्ट्री दोबारा बन्द हो गई। फैसले में किसी भी वर्कर के ऊपर से केस वापस नहीं लिया गया और 5 वर्करों को जेल में बन्द कर दिया। संगठन ना बनाने और गलती करने पर काम से निकाल देने जैसी जलील व ने वाली सूरतों पर साईन लेकर काम पर वापस लिया गया। लेकिन बहुत सारे वर्करों ने सीटू के अनुसार केस करके अपना हिसाब लिया और चले गये और इस तरह मजदूरों के एक जुझारू कदम का ऐसा हश्र होने के कारण निराशा ही हाथ लगी।

ऐसे स्वतःस्फूर्त ढंग से उठने वाले आन्दोलनों का ऐसा हश्र होने के कारण अब मजदूर साथियों के समक्ष कई सवाल उठ खड़े हुए हैं। चाहे तो इसी तरह खटते रहें और मालिकों के रहमोकरम पर जिन्दा रहें या फिर अपना हक लेने के लिए एक सच्चे मजदूर संगठन का निर्माण करें जो वास्तव में सभी मजदूरों की माँगों को लेकर चल सके। ऐसा संगठन बनाने के लिए जरूरी है एक विचार का होना और आज हमें 'नेताजी जो करते हैं ठीक है' वाली रट छोड़कर अपनी लूट के बारे में और इसके हल के बारे में जानना होगा और एक सही लाईन पर चल कर ही हम अपनी दासता की बेड़ियों को तोड़ सकते हैं।

शहीदेआज़म भगतसिंह की पाँच ज़रूरी पुस्तिकाएँ
हर नौजवान हर मज़दूर के लिए ज़रूरी
• क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा
• मैं नास्तिक क्यों हूँ और ड्रीमलैण्ड की भूमिका
• बम का दर्शन और अदालत में बयान • जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो, सही लड़ाई से नाता जोड़ो • भगतसिंह ने कहा...
जनचेतना के सभी केन्द्रों से प्राप्त करें

परमाणु ऊर्जा मसले पर भारत सरकार ने ईरान की पीठ में छुरा भोंका

भारतीय शासकों ने साम्राज्यवादी दबावों के आगे घुटने टेके

(विशेष संवाददाता)

दिल्ली। भारत सरकार ने बीते 25 सितम्बर को वियना में सम्पन्न अन्तरराष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी (आईएईए) की बैठक में ईरान के खिलाफ वोट देकर अमेरिकी और यूरोपीय साम्राज्यवादियों के दबावों के आगे घुटने टेक दिये। बैठक में यूरोपीय संघ ने यह प्रस्ताव पेश किया था कि अगर ईरान आईएईए को अपने परमाणु कार्यक्रमों के बारे में अपेक्षित जानकारी नहीं देगा तो उस पर प्रतिबन्ध के लिए मामले को संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद को सौंप दिया जायेगा।

गौरतलब है कि यूरोपीय संघ के इस प्रस्ताव पर रूस और चीन जैसे ताकतवर देशों ने ही नहीं दक्षिण अफ्रीका जैसे तीसरी दुनिया के कई देशों ने नकारात्मक वोट दिया था। मनमोहन सरकार अपने इस कदम को तरह-तरह के कुतर्कों के जरिये जायज ठहराने की कोशिश कर रही है लेकिन यह सीधे-सीधे साम्राज्यवादी दबावों के सामने समर्पण के सिवा कुछ नहीं है।

वैसे मनमोहन सरकार के इस कदम पर किसी को अचरज नहीं होना चाहिए। इस समर्पण की पृष्ठभूमि दो महीने पहले ही बन चुकी थी जब मनमोहन सिंह ने अपनी अमेरिका यात्रा के दौरान जार्ज बुश से समझौता किया था। इस समझौते में भारतीय शासकों की ओर से मनमोहन सिंह ने जार्ज बुश को आश्वस्त किया था कि अगर परमाणु तकनीक और परमाणु ईंधन पर 1973 से लगा प्रतिबन्ध उठा लिया जाये तो आईएईए के पर्यवेक्षक भारत के असैनिक परमाणु ठिकानों का निरीक्षण कर सकते हैं। जार्ज बुश ने केवल अपनी ओर से यह मौखिक आश्वासन दिया था कि वह इस दिशा में प्रयास करेगा। इसी मौखिक आश्वासन के आधार पर मनमोहन सिंह ने भारतीय असैनिक परमाणु केन्द्रों के निरीक्षण की अनुमति दे दी थी। जब तक अमेरिकी कांग्रेस और सीनेट अपनी सहमति नहीं दे देती तब तक अमेरिका पुराने प्रतिबन्धों के तहत भारत को परमाणु तकनीक व ईंधन की आपूर्ति चालू नहीं कर सकता। अमेरिका के अलावा अन्य परमाणु शक्ति सम्पन्न यूरोपीय देश भी भारत को तभी परमाणु ईंधन और नाभिकीय रियेक्टर बेच सकते हैं जब नाभिकीय आपूर्तिकर्ता समूह (एनएसजी) के देश अपनी शर्तों को ढीला करें। बुश ने मनमोहन सिंह को मौखिक आश्वासन दिया था कि वह एनएसजी को भी सहमत करने की कोशिश करेगा और अमेरिकी कांग्रेस तथा सीनेट को भी।

अन्तरराष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी की वियना बैठक के दौरान अमेरिकी और यूरोपीय साम्राज्यवादियों ने भारतीय शासकों पर दबाव बनाया कि अगर वह परमाणु ईंधन और नाभिकीय रियेक्टर के व्यापार पर लगे प्रतिबन्ध में ढील चाहता है तो बदले में उसे ईरान के मसले को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद को सौंपने सम्बन्धी प्रस्ताव के पक्ष में वोट डालना पड़ेगा। भारतीय शासकों ने इस दबाव के आगे घुटने टेक दिये। उसने ईरान के साथ पाकिस्तान होकर जाने वाली प्रस्तावित गैस पाइपलाइन परियोजना और ईरान के साथ तेल की आपूर्ति के बारे में हुए समझौते को भी जोखिम में डाल दिया।

ईरान जैसे तीसरी दुनिया के अपने स्वाभाविक बिरादर की पीठ में भारतीय शासकों ने जो छुरा भोंका है वह आज भूमण्डलीकरण के दौर में भारतीय शासक वर्ग के चरित्र की एक विशेषता बन गयी है। इसके पहले भी कई ऐसे मौके आये हैं जब भारतीय शासक वर्ग तीसरी दुनिया के अपने बिरादरों का साथ देने के बजाय उनकी पीठ में छुरा भोंककर साम्राज्यवादियों के साथ जा खड़ा हुआ है। देश में जो लोग भारत-ईरान की परम्परागत दोस्ती की दुहाइयाँ दे रहे हैं उन्हें समझना चाहिए कि पूँजी की दुनिया में केवल स्वार्थ के रिश्तों का समीकरण काम करता है। नैतिकता, दोस्ती आदि सब कुछ वर्गीय स्वार्थ के मातहत ही होते हैं।

भारतीय शासक पूँजीपति वर्ग का वर्गीय स्वार्थ है कि वह जब जरूरत पड़े तो अपने स्वाभाविक बिरादरों की पीठ में छुरा भोंककर साम्राज्यवादियों के चरणों में लोट लगाये और जब परिस्थितियाँ इजाजत दें तो अपने इन्हीं बिरादरों की एकजुटता को बटखरे के रूप में इस्तेमाल कर साम्राज्यवादी महाप्रभुओं से सौदेबाजी करे। आज भारतीय शासक वर्गों की क्षेत्रीय विस्तारवादी मंसूबों की जरूरत है कि वह परमाणु शक्ति सम्पन्न देशों के क्लब में शामिल होने के लिए हाथ-पैर मारे, भले ही इसके लिए उसे अपनी रीढ़ ही क्यों न निकलवा देनी पड़े। वियना में हुआ समर्पण इसी का नतीजा है।

गौरतलब है कि संसदीय वामपन्थी पार्टियों को छोड़कर अन्य कोई संसदीय पार्टी मनमोहन सरकार के इस फैसले के खिलाफ जुबान नहीं खोल रही है। जाहिर है कि आर्थिक नीति की ही तरह विदेश नीति के मामले में भी सभी संसदीय पार्टियों की आमराय है। इस मसले पर संसदीय वामपन्थियों का विरोध भी नई आर्थिक नीतियों के विरोध जैसा पाखण्ड ही है। अपने जनाधार को बचाने के लिए कुछ न कुछ कवायद तो उन्हें करनी ही है। इस मसले पर अभी ये पार्टियाँ मनमोहन सरकार पर लाल-पीली हो रही हैं। सरकार के साथ एक-दो चक्रों की वार्ताओं के बाद वे या तो सरकार की मजबूरियों को "समझ" जायेंगे या नाराज चेहरा लिये हुए सरकार को समर्थन जारी रखेंगे, क्योंकि साम्प्रदायिक ताकतों को सत्ता से बाहर जो रखना है।

गाज़ा पट्टी से चंद यहूदी बस्तियां हटाने से फिलस्तीन की समस्या हल नहीं होगी

फिलस्तीनी जनता का संघर्ष जारी रहेगा

यहूदी बस्तियों को हटाने की घटना को पिछले दिनों पश्चिमी बुर्जुआ मीडिया ने फिलस्तीनी समस्या के समाधान की ओर एक महत्त्वपूर्ण कदम के तौर पर प्रचारित किया। गाजा पट्टी से यहूदी बस्तियों को हटाने की घटना को जिस तरह ढोल-नगाड़ा पीट कर प्रचारित किया गया, उसमें दरअसल एरियल शेरोन की असली मंशा और असली योजना को छुपाने की भरपूर कोशिश थी। फिलस्तीन को दुनिया के नक्शे से मिटा देने पर आमादा इस्राइली शासक वर्ग पहले भी धोखे की टट्टी खड़ी कर अपने नापाक मंसूबे पूरे करता रहा है।

इस बार गाजा पट्टी के यहूदी बाशिन्दे इस्राइल की एरियल शेरोन सरकार के इस नये खेल का शिकार बने। कभी उन्हें फिलस्तीन की जमीन गाजा पट्टी पर इस्राइली घुसपैठ के मोहरे के तौर पर बसाया गया था और अब पिछले दिनों इस नये खेल के तहत उजाड़ दिया गया। फिलस्तीन के पश्चिमी किनारे (वेस्ट बैंक) से भी कुछ लोगों को हटाया गया, पर यह मामूली था। कुल मिलाकर दुनिया को यह दिखाने की कोशिश की गई कि इस्राइल अब फिलस्तीन पर किये अवैध कब्जे से पीछे हट रहा है।

ऐसा नहीं है कि गाजा पट्टी से इस्राइल पूरी तरह पीछे हट गया हो। गाजा पट्टी घटना की आड़ में वह फिलस्तीन की घेराबंदी को और चुस्त कर रहा था। यह बात इस्राइली शासक वर्ग भी समझता है कि अपनी सैन्य ताकत के दम पर गाजा पट्टी में यहूदी बस्तियों को कायम रखना न केवल बेहद खर्चीला है बल्कि गाजा पट्टी और पश्चिमी किनारे में से गाजा पट्टी से ही थोड़ा पीछे हटना फायदे का सौदा है। जहाँ तक दखल का सवाल है तो इस दौरान ही उसके द्वारा फिलस्तीन मुक्ति संघर्ष पर लगातार हमले हुए हैं। गाजा पट्टी की सामरिक नाकेबंदी बरकरार है। "आतंकी तानेबाने" के खात्मे के नाम पर हमास ही नहीं वरन आम आबादी पर भी उसने हमले तेज कर दिये। वर्तमान फिलस्तीन नेतृत्व के समझौतापरस्त और घुटनाटेकू रवैये के कारण इस्राइल ज्यादा आक्रामक होकर फिलस्तीनी स्वायत्तता की धज्जियाँ उड़ाते हुए आक्रमण कर रहा है।

गाजा पट्टी से यहूदी बस्तियां हटाने का जब शोर शराबा हो रहा था इसी दौरान, इस्राइली शासक वर्ग पश्चिम किनारे के अपने कब्जे को और पुख्ता करने में जुटा हुआ था। साथ ही उसने येरुशलम में बाड़बन्दी (तार लगाने) के काम को तेज कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप करीब साठ हजार लोगों का शहर में घुसना दूभर हो जायेगा। वहीं इस्राइली अधिकारियों से अनुमति, इस्राइली चेक पोस्टों से होकर अपमानजनक तरीके से गुजरने की प्रक्रिया, यानी पूरा दैनन्दिन जीवन इस्राइली हुक्मरानों के बूटों और संगीनों के नीचे आ जायेगा।

इस्राइली प्रधानमंत्री ने उद्दंडतापूर्ण घोषणा भी की कि येरुशलम के सवाल पर कोई समझौता नहीं होगा। इसके साथ ही यह भी कि पश्चिमी किनारे पर मुख्य बस्तियों के समूह (जो कि पश्चिमी किनारे का अधिकांश है) हमेशा ही इस्राइली शासन के अधीन रहेंगे। जाहिर है कि गाजा पट्टी की 22 यहूदी बस्तियों की "कुर्बानी" की आड़ में दरअसल एरियल शेरोन सरकार अपने कब्जे को और विस्तारित करने में लगी हुई थी।

अन्याय और जुल्म का प्रतीक बन चुकी सरकारें कैसे अपनी ही आम मेहनतकश जनता को बलि का बकरा बनाती हैं, इसका यह एक उदाहरण है। अमेरिका और दुनिया के तमाम यहूदीवादी पूँजीपति घरानों द्वारा मिलने वाली अथाह मदद के बावजूद इस्राइल में आम मेहनतकश जनता का संकट बढ़ ही रहा है। दो माह पहले की एक रिपोर्ट में बताया गया था कि गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों का प्रतिशत 23.6 तक पहुँच गया है, जो अब तक का अधिकतम है। कुल इस्राइली बच्चों का एक तिहाई गरीबी रेखा के नीचे का जीवन जी रहा है, हालाँकि इसमें अधिकांश अरब मूल के हैं। अरब मूल की जनता के खिलाफ भेदभाव पहले से बढ़ा है। ये सब हालात बताते हैं कि इस्राइल के यहूदीवादी फासिस्टों के गंदे कारनामों से फिलस्तीन की आम जनता की जिन्दगी तो तबाह हुई है, साथ ही स्वयं इस्राइली आम जनता भी परेशानहाल है।

बहरहाल, फिलस्तीन की समस्या का समाधान इस्राइल या अमेरिका का शासक वर्ग न तो चाहता है और न ही इस दिशा में किसी सही कदम की उससे उम्मीद की जा सकती है। फिलस्तीन की जनता बहादुरी से लड़ रही है और आगे भी लड़ती रहेगी। लेकिन वर्तमान फिलस्तीनी नेतृत्व से यह अपेक्षा रखना बेकार है कि वह फिलस्तीनी जनता की आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए संघर्ष की राह पर सही दिशा में आगे बढ़ेगा। जहाँ तक अरब के तमाम वर्गों का सवाल है, फिलस्तीनी जनता के संघर्षों ने उनके भी असली चरित्र को बेनकाब किया है। अमेरिका के सामने दुम हिलाने वाले ही बल्कि एक समय में साम्राज्यवाद विरोध का झंडा थामने वाले शासक तक आज फिलस्तीनी अवाम के समर्थन में कहीं खड़े नजर नहीं आते। उल्टे उन्हें यह भय सताता रहता है कि अरब जगत में साम्राज्यवाद विरोधी चेतना का केन्द्र बन चुकी फिलस्तीन मुक्ति संघर्ष उनके यहाँ की मेहनतकश जनता को प्रेरित करते हुए एक ऐसे तूफान का कारण न बन जाये कि उनकी ही सत्तायें खतरे में पड़ जायें।

नए जनसंहारों की तैयारी में अमेरिका का विराट सैन्य बजट

हथियारों के बड़े से बड़े जखीरे भी जनसंघर्षों के सैलाब में डूब जाते हैं!

अमेरिका का वर्ष 2005 का सैन्य बजट 420 अरब डालर का है। जाहिर है चौधरी की चार सौ बीसी के खिलाफ उठने वाली आवाजों को कुचलने के लिए यह चार सौ बीस अरब डॉलर अफगानिस्तान, इराक के बाद अगले जनसंहारों की तैयारी के लिए ही है। मानव रक्तपिपासु साम्राज्यवाद मानवता को जिस विनाश के रास्ते पर ले जा रहा है, उस तस्वीर की एक झलक मात्र है—अमेरिका का सैन्य बजट।

आज अमेरिका अपनी युद्ध मशीनरी में जितनी दौलत खर्च कर रहा है वह उसके बाद के सत्रह देशों के कुल खर्च से ज्यादा है। वर्ष 2005 के 420 अरब डॉलर के बजट में वह भारी भरकम राशि शामिल नहीं है जो वह अपने जासूसी संगठनों पर खर्च करता है। इसके अलावा 89 अरब डॉलर की राशि अलग है, जो अफगान, इराक के खिलाफ़ युद्ध के लिए मंजूर है।

दुनिया भर में मेहनत की लूट से हासिल यह धन संपदा आखिरकार दुनिया के मेहनतकशों के खिलाफ युद्ध में ही इस्तेमाल होना है। बहाने कुछ भी हो सकते हैं। अफगानिस्तान और इराक पर हमले के लिए अमेरिकी शासक वर्ग ने पूरी बेहयाई के साथ सफेद झूठ बोले, झूठे बहाने गढ़े। हकीकत पूरी दुनिया जानती है कि असली मुख्य मकसद वहाँ की अकूत तेल संपदा पर अपना कब्जा जमाना था।

बहुत पहले सर्वहारा वर्ग के शिक्षक लेनिन ने कहा था "पूँजीवाद जितना ही विकसित होगा, कच्चे मालों की कमी उतनी ही अधिक महसूस की जायेगी, आपसी होड़ और दुनिया भर में कच्चे मालों के स्रोतों की तलाश उतनी ही तेज होती जायेगी और उपनिवेशों पर कब्जा करने का संघर्ष उतना ही बदहवासी भरा होता जायेगा।"

मुनाफे के लिए पगलाया, बदहवास साम्राज्यवाद आज आधुनिक हथियारों, स्वचालित सैन्य बलों के द्वारा दुनिया भर के कच्चे माल के स्रोतों पर कब्जा जमा लेना चाहता है। लेकिन दुनिया न तो साम्राज्यवाद की चाहत से चलती है और न ही बन्दूक की नोक के इशारे पर। इराक में बाहुबली की मिट्टी पलीद होना इसका ताजा-उदाहरण है।

तालाबन्दी पूँजीपति का हक?

(पेज 1 से आगे)

दूसरी ओर मजदूर तब हड़ताल करता है, जब उसके सामने कोई दूसरा रास्ता नहीं बचता। हड़ताल करना या लड़ना मजदूर वर्ग का शौक नहीं होता। पूँजीपति वर्ग द्वारा श्रम की लूट और अन्याय व जुल्म मजदूर वर्ग को मजबूर करते हैं कि अपना अस्तित्व बचाने के लिए वह लड़े।

तमाम कारखानों के उदाहरण देख लें, एक-एक हड़ताल का अध्ययन कर लें, ज्यादातर में यही बात दिखाई देगी कि कारखानेदार ने ऐसी स्थितियाँ पैदा कर दी थीं कि हड़ताल के अलावा और कोई रास्ता नहीं बचा था।

जाहिर है कि यदि अन्याय के खिलाफ विद्रोह बेहद मानवीय कर्म है तो मजदूर वर्ग के द्वारा अपनी न्यायसंगत माँगों के लिए हड़ताल करना नाजायज कैसे हो सकता है? भारतीय न्यायपालिका कहती है कि हड़ताल करना गैरकानूनी है। यह कहकर क्या न्यायपालिका अपनी पक्षधरता स्पष्ट नहीं कर देती?

चीनी नवजनवादी क्रान्ति (अक्टूबर, 1949) की 56वीं वर्षगाँठ के अवसर पर

वर्तमान संदर्भ और चीन की नवजनवादी क्रान्ति के ज़रूरी और बहुमूल्य सबक

अरुण किशोर नवल

चीन की नवजनवादी क्रान्ति की इस वर्ष अक्टूबर के महीने में 56वीं वर्षगाँठ है। यह क्रान्ति साम्राज्यवादी लुटेरों और सामन्ती आततायियों पर चीनी मेहनतकश जनता की ऐतिहासिक विजय मात्र ही नहीं थी, बल्कि पेरिस कम्यून (1871) और 1917 की सोवियत समाजवादी क्रान्ति के बाद, विश्व सर्वहारा क्रान्ति की ऐतिहासिक विकास-यात्रा का अगला महत्त्वपूर्ण मुकाम थी।

यह समय था जब अमेरिका और यूरोप के साम्राज्यवादी दूसरे विश्वयुद्ध में फासीवाद को पराजित करने में सोवियत जनता की अविश्वसनीय पराक्रमी भूमिका, अभूतपूर्व बलिदान और विनाश की राख से फीनिक्स पक्षी के समान उठ खड़े होने की शक्ति से हतप्रभ और आतंकित थे। ढाई करोड़ जनता की कुर्बानी के बाद लाल सेना ने नात्सी बर्बरों को मास्को के निकट से पीछे धकेलते हुए बर्लिन में ले जाकर धूल में मिला दिया था और इस प्रक्रिया के दौरान पूरा पूर्वी यूरोप भी लाल हो चुका था। वहाँ सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में लोक जनवादी सत्ताओं की स्थापना हो चुकी थी।

इतिहास के इस दौर में, सोवियत संघ के हाथों जर्मन नात्सियों की करारी हार जितना ही विश्व ऐतिहासिक महत्त्व यदि किसी घटना का था तो वह थी दुनिया की सबसे अधिक आबादी और प्रचुर प्राकृतिक सम्पदा वाले, सदियों से साम्राज्यवादी लुटेरों की बंदरबाँट और लूटमार के शिकार, भुखमरी, पिछड़ेपन एवं अशिक्षा के अँधेरे में पड़े चीन देश में, माओ त्से-तुङ की अध्यक्षता वाली कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में, नवजनवादी क्रान्ति की घटना, जिसने साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के आधिपत्य को धूल में मिलाकर सर्वहारा वर्ग की नेतृत्वकारी भूमिका वाले, जनता के जनवादी अधिनायकत्व की स्थापना की और फिर जल्दी ही समूचा देश समाजवादी निर्माण एवं क्रान्ति के रास्ते पर निरंतर नये-नये प्रयोग करता हुआ आगे बढ़ चला। इतने बड़े औपनिवेशिक बाज़ार के एकदम से हाथ से निकल जाने की घटना को देखकर साम्राज्यवादियों के सीने पर साँप लोट गया। यही नहीं, इतिहास की ऊपरी सतह को देखकर नतीज़ा निकालने वाले राजनीति शास्त्री और इतिहासकार भी चीन में कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व और सर्वहारा वर्ग की अगुवाई में हुई इस अनूठी क्रान्ति की सफलता पर चकित थे। चीन एक किसान-बहुल और बेहद पिछड़ा देश था और सर्वहारा वर्ग की संख्या भी बहुत कम थी। ऐसी स्थिति में, एक सामन्तवाद-साम्राज्यवाद विरोधी क्रान्ति में पूँजीपति वर्ग और उसकी पार्टी के बजाय सर्वहारा वर्ग और उसकी पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका किताबी पण्डितों के लिए आश्चर्य का विषय थी। उस समय न केवल चीन की जनता की प्रगति के सन्दर्भ में, बल्कि पूरे विश्व के शक्ति-संतुलन को बदलने में चीनी क्रान्ति की भूमिका महान थी। उल्लेखनीय है कि चीनी क्रान्ति ने आक्रमणकारी जापानी साम्राज्यवादियों को लम्बे युद्ध में उलझाकर और उनकी कमर तोड़कर विश्व-युद्ध के दौरान भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। क्रान्ति के बाद दो पड़ोसी एशियाई देशों में वियतनाम में हो ची मिन्ह के नेतृत्व वाली वियतनामी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में और कोरिया में किम इल-सुङ के नेतृत्व वाली कोरियाई कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में जनता के जो प्रचण्ड राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष जारी थे, उन्हें सफलता के मुकाम तक पहुँचाने में चीन के लोक गणराज्य की सहायता की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। लेकिन चीन की नवजनवादी क्रान्ति की विश्व-ऐतिहासिक भूमिका इससे भी कहीं अधिक थी। बीसवीं शताब्दी के छठे-सातवें दशक में जिन अफ्रीकी देशों की जनता ने मुक्ति युद्धों में उपनिवेशवादियों को करारी शिकस्त देकर राष्ट्रीय आजादी हासिल की, उन सभी मुक्ति युद्धों में माओ-त्से-तुङ द्वारा प्रतिपादित छापामार युद्ध की सामरिक रणनीति का ही इस्तेमाल किया गया था। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के सभी राष्ट्रीय मुक्ति-युद्धों के लिए चीनी नवजनवादी क्रान्ति ने एक मार्गदर्शक की भूमिका निभायी थी।

तबसे लेकर आजतक, खासकर पिछले तीन दशकों के दौरान दुनिया में काफी कुछ महत्त्वपूर्ण बदलाव हुए हैं। उपनिवेशवाद और नवउपनिवेशवाद का दौर बीत चुका है। वर्ग-संघर्ष के दबाव और अपनी आन्तरिक गति के चलते साम्राज्यवादी लूट के तौर-तरीकों में काफी महत्त्वपूर्ण बदलाव आये हैं। अब प्रत्यक्ष शासन (उपनिवेशवाद) या किसी प्रकार की कठपुतली सत्ता के जरिए शासन (नवउपनिवेशवाद) के बजाय साम्राज्यवादी देश अपनी पूँजी की आर्थिक ताकत, तकनोलॉजी की श्रेष्ठता और विश्व-बाजार पर अपने स्थापित प्रभुत्व के सहारे एशिया-अफ्रीका-लातिन अमेरिका के भूतपूर्व औपनिवेशिक-नवऔपनिवेशिक देशों को लूट रहे हैं। इन देशों के पूँजीपति वर्गों के जिस हिस्से ने उपनिवेशवाद और नवउपनिवेशवाद के विरुद्ध जनमुक्ति संघर्ष में, अलग-अलग हदों तक राष्ट्रीय भूमिका निभायी थी, उनमें से अधिकांश आज राष्ट्रवाद का झण्डा धूल में फेंककर साम्राज्यवादियों के 'जूनियर पार्टनर' बन गये हैं। दरअसल, होना भी यही था। साम्राज्यवादी प्रभुत्व वाले विश्व पूँजीवादी तंत्र से निर्णायक विच्छेद केवल सर्वहारा वर्ग की सत्ता ही कर सकती थी। जिन देशों में उपनिवेशवाद-नवउपनिवेशवाद की समाप्ति के बाद देशी पूँजीपति वर्ग की सत्ता कायम हुई, वहाँ साम्राज्यवादियों के दबाव से सापेक्षिक छुटकारे के एक छोटे से दौर के बाद जल्दी ही आत्मसमर्पण का दौर शुरू हो गया। पिछड़े देशों का पूँजीवाद विश्व पूँजीवाद से स्वतंत्र, अपना अलग रास्ता चुन ही नहीं सकता था। पूँजी और तकनोलॉजी की जरूरत और विश्व बाजार में अपनी पहुँच के लिए इन देशों के शासक पूँजीपतियों को अंततोगत्वा साम्राज्यवादियों के सामने घुटने टेकने ही थे। भूमण्डलीकरण के वर्तमान दौर में, उदारीकरण-निजीकरण की निर्बाध विश्वव्यापी प्रक्रिया के दौर में, यह प्रकृति आज पूरी दुनिया की मुख्य प्रवृत्ति बन चुकी है। निस्संदेह, पिछड़े देशों के पूँजीपति साम्राज्यवाद के दलाल जैसी भूमिका में नहीं आ गये हैं। इतिहास का उपनिवेशवाद-नवउपनिवेशवाद वाला दौर अब लौटकर वापस नहीं आ सकता। ये पूँजीपति साम्राज्यवादियों के आपसी अन्तरविरोधों का लाभ भी उठाते हैं और पूरी दुनिया के पैमाने पर निचोड़े गये मुनाफे में अपना हिस्सा बढ़ाने के लिए साम्राज्यवादी चौधरियों पर हर संभव दबाव बनाने और लड़ने-झगड़ने का काम भी करते हैं, लेकिन यह झगड़ा छोटे-बड़े लुटेरों का आपसी झगड़ा मात्र है। एशिया-अफ्रीका-लातिन अमेरिका के लगभग सभी अग्रणी और महत्त्वपूर्ण देशों में समूचा देशी पूँजीपति वर्ग और सभी किस्म के पूँजीवादी फार्मर और भूस्वामी अब किसी भी सम्भावित क्रान्ति में जनता के मित्र की भूमिका नहीं निभा सकते। इन सभी देशों के भीतर क्रमिक पूँजीवादी विकास ने प्राक्-पूँजीवादी बंधनों को तोड़कर एक राष्ट्रीय बाजार का निर्माण किया है और बाजार के लिए उत्पादन, अर्थतंत्र की मुख्य प्रवृत्ति बन चुका है। सामन्ती बँधुआ श्रम का स्थान अब उजरती गुलामी ने ले लिया है। मजदूर अपनी श्रम शक्ति बेचने को आजाद है, लेकिन खून निचोड़ने वाली कीमत और शर्तों पर। वर्गों के ध्रुवीकरण और मध्यवर्ती आबादी के सर्वहाराकरण की प्रक्रिया सर्वत्र जारी है और पूँजी और श्रम के बीच का अन्तरविरोध, कुछ इने-गिने छोटे देशों को छोड़कर, तीसरी दुनिया के सभी देशों में, एकदम स्पष्ट रूप से प्रधान अन्तरविरोध बन चुका है। ऐसे सभी पिछड़े पूँजीवादी देश जनवादी क्रान्ति की मंजिल को पीछे छोड़कर एक नये प्रकार की समाजवादी क्रान्ति– साम्राज्यवाद-पूँजीवाद विरोधी क्रान्ति की मंजिल में प्रविष्ट हो चुके हैं। इन देशों की पूँजीवादी राज्यसत्ताएँ आधुनिक सेना-पुलिस एवं गुप्तचरी के तंत्र से लैस हैं और उनकी देशव्यापी पकड़ एवं पहुँच मजबूत है। सुदूरवर्ती गाँवों तक में पूँजीवादी राज्यसत्ता के सामाजिक-आर्थिक अवलम्ब मौजूद हैं।

माओ त्से-तुङ के नेतृत्व में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने चीन की कमजोर केन्द्रीय सत्ता की उपस्थिति, देश के ग्रामीण क्षेत्रों में अलग-अलग सामन्ती भूस्वामियों की बिखरी हुई स्वायत्त प्रभुसत्ताओं की मौजूदगी और पूरे देश के कई साम्राज्यवादी ताकतों के प्रत्यक्ष-परोक्ष नियंत्रण में बँटे होने की स्थिति का ठोस, वस्तुपरक अध्ययन किया था और छापामार युद्ध से 'पोजीशनल' युद्ध की दिशा में आगे बढ़ते हुए, छापामार इलाकों को मुक्त क्षेत्रों में बदलते हुए, गाँवों से शहरों को घेरते हुए, शत्रु की ताकत को खण्ड-खण्ड करके तोड़ते और कमजोर करते हुए केन्द्र पर निर्णायक हमले की सामरिक रणनीति का आविष्कार किया था और चीनी क्रान्ति को सफल बनाया था। जनवादी क्रान्ति के इस रास्ते को दीर्घकालिक लोकयुद्ध के रास्ते के नाम से जाना जाता है। आज की स्थिति में, पिछड़े पूँजीवादी देशों में भी, साम्राज्यवाद-समर्थित और उन्नत सैन्य तंत्र एवं देशव्यापी ताने-बाने से लैस पूँजीवादी राज्यसत्ता के विरुद्ध यह रास्ता कत्तई लागू नहीं हो सकता। आज सर्वहारा वर्ग की हरावल पार्टी के सामने एकमात्र रास्ता यही हो सकता है कि वह सर्वहारा वर्ग के साथ-साथ जनता के सभी वर्गों की माँगों पर लड़ते हुए वर्ग संघर्ष को आगे बढ़ाये, इस दौरान जनता की राजनीतिक चेतना को ऊपर उठाये, क्रान्ति के संयुक्त मोर्चे को दृढ़ से दृढ़तर बनाये, जनता के बीच निरन्तर अपनी कार्रवाइयों के द्वारा अपना व्यापक से व्यापकतर सामाजिक-समर्थन आधार और जन-दुर्ग का निर्माण करे, समूची मेहनतकश जनता के व्यापकतम भाग पर रोजमर्रे की जमीनी कार्रवाइयों, संघर्षों में सफल नेतृत्वकारी भूमिका और सतत विचारधारात्मक-राजनीतिक प्रचार के जरिए अपना विचारधारात्मक वर्चस्व स्थापित करे, विभिन्न देशव्यापी राजनीतिक हड़तालों एवं जनान्दोलनों के दौरान अपनी ताकत को भली-भाँति तौल ले, इस प्रक्रिया के साथ-साथ समुचित सामरिक तैयारी जारी रखे और फिर अनुकूलतम समय के सटीकतम आकलन के आधार पर देशव्यापी जन विद्रोह के तड़ित-प्रहार से पूँजीवादी राज्यसत्ता को चकनाचूर कर दे। दीर्घकालिक लोकयुद्ध का रास्ता जहाँ नवजनवादी क्रान्ति का मार्ग होता है, वहीं आम जनविद्रोह का यह रास्ता ही समाजवादी क्रान्ति का रास्ता हो सकता है।

हम कहना यह चाहते हैं कि चीन की महान नवजनवादी क्रान्ति की विश्व-ऐतिहासिक भूमिका होने के बावजूद, हम आज उसका आँख मूँदकर अनुकरण नहीं कर सकते। आज भारत में ही नहीं, दुनिया के अधिकांश देशों में, सर्वहारा क्रान्तिकारियों के बहुतेरे ग्रुप और संगठन माओ त्से-तुङ और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी से सीखने के नाम पर, परिस्थितियों में आये परिवर्तनों की अनदेखी करते हुए, उनके द्वारा विगत शताब्दी के पूर्वार्द्ध में चीन में अपनायी गयी क्रान्ति रणनीति और आम रणकौशल को ही कुछ हेर-फेर के साथ लागू करने की कोशिश कर रहे हैं। चूँकि परिस्थितियाँ इसकी इजाजत नहीं देतीं, इसलिए इनमें से बहुतेरे रुटीनी कवायद करते हुए निष्क्रियप्राय या संसदमार्गी हो जाते हैं, तो कुछ सुदूर दुर्गम और पिछड़े क्षेत्रों में सैन्यवादी-दुस्साहसवादी कार्रवाइयों तक सिमट जाते हैं। जनवादी क्रान्ति करने की जिद में मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ विचारधारा का नाम लेते हुए ये सभी तरह-तरह से नरोदवाद का विकृत भौंडा प्रहसन प्रस्तुत करने लगते हैं। यही आज क्रान्तिकारी सर्वहारा आन्दोलन के ठहराव और संकट का मूलभूत कारण है। स्वयं माओ त्से तुङ ने हमें बार-बार यह शिक्षा दी है कि सर्वहारा क्रान्तिकारियों को अतीत की क्रान्तियों की आँख मूँदकर नकल की बचकानी कोशिश के बजाय अपने समय की विश्व परिस्थितियों और अपने देश के समाज का ठोस वस्तुगत अध्ययन-विश्लेषण करना चाहिए और क्रान्ति के चरित्र एवं मार्ग का निर्धारण करना चाहिए। चीन की नवजनवादी क्रान्ति की सफलता का बुनियादी कारण यह था कि यूरोप के सर्वहारा संघर्षों और रूसी क्रान्ति के अनुभवों से सीखते हुए भी माओ के नेतृत्व में चीन की पार्टी ने उनका अन्धानुकरण नहीं किया। उसने चीनी समाज के वर्ग सम्बन्धों और परिस्थितियों का ठोस अध्ययन किया और नवजनवादी क्रान्ति तथा दीर्घकालिक लोकयुद्ध के मार्ग का निष्कर्ष निकाला। इस प्रक्रिया में कई बार उसने अन्तरराष्ट्रीय नेतृत्व के सुझावों से अलग जाकर अपने अध्ययन और अनुभव पर भरोसा करने का साहस किया। यही उसकी सफलता का मूल कारण था और चीन की क्रान्ति के अनुभवों से आज सर्वोपरि तौर पर यही चीज सीखने की जरूरत है।

चीन की नवजनवादी क्रान्ति के इतिहास का आज गहन अध्ययन इसलिए भी जरूरी है कि हम यह देख सकें कि उस समय के चीन से आज के भारत और तीसरी दुनिया के अधिकांश देशों की परिस्थितियाँ किस प्रकार गुणात्मक रूप से भिन्न हैं और किस प्रकार इन देशों में आज नवजनवादी क्रान्ति की परिस्थितियाँ मौजूद ही नहीं हैं। कुछ छोटे और बेहद पिछड़े देशों को छोड़कर, तीसरी दुनिया के सभी देशों में नयी समाजवादी क्रान्ति की वस्तुगत परिस्थितियाँ मौजूद हैं। अलग-अलग हदों तक प्राक्-पूँजीवादी अवशेषों के बावजूद ये देश पिछड़े पूँजीवादी देशों की श्रेणी में आ चुके हैं।

लेकिन इसका यह मतलब कदापि नहीं निकाला जा सकता कि चीन की नवजनवादी क्रान्ति के अनुभव हमारे लिए आज पूरी तरह से अप्रासंगिक हो चुके हैं। जनता के बीच पार्टी के कार्य,

(पेज 7 पर जारी)

वर्तमान संदर्भ और चीन की नवजनवादी क्रान्ति के ज़रूरी और बहुमूल्य सबक

(पेज 6 का शेष)

पार्टी-निर्माण सम्बन्धी चीनी क्रान्ति के अनुभव और उनके विचारधारात्मक-राजनीतिक कार्यों के अनुभव, क्रान्ति की मंजिल बदल जाने के बावजूद आज भी पूरी दुनिया के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के लिए अत्यन्त बहुमूल्य और अत्यन्त प्रासंगिक हैं और आगे भी बने रहेंगे। आगे हम संक्षेप में इनकी चर्चा करेंगे।

•

(1) चीन की नवजनवादी क्रान्ति का अनुभव हमें बताता है कि प्रत्येक सर्वहारा क्रान्ति की सफलता की बुनियादी गारण्टी उसकी लाइन (कार्यदिशा) के सही या गलत होने से तय होती है। सर्वहारा वर्ग की कोई भी पार्टी अपने देश की ठोस परिस्थितियों का अध्ययन करके क्रान्ति की ठोस लाइन तभी तय कर सकती है जब मार्क्सवादी विज्ञान पर उसकी पकड़ मजबूत हो। यह केवल चन्द एक नेताओं की प्रतिभा और विद्वता से ही सम्भव नहीं हो सकता। इसके लिए जरूरी है कि पूरी पार्टी सीखने में निपुण हो। वह अतीत की सभी क्रान्तियों की वैचारिक विरासत और व्यावहारिक अनुभवों से सीखे, दुनिया भर में जारी वर्ग संघर्ष से सीखे और सबसे बड़ी बात यह कि अपने देश की जनता के बीच काम करते हुए उससे सीखे। तभी वह एक गतिमान चरित्र वाली पार्टी होगी जो परिस्थितियों के हर बदलाव के अनुसार, अपनी रणनीति और रणकौशल में बदलाव लाने में सक्षम हो सकेगी और क्रान्ति को सफलता के मुकाम तक पहुँचा सकेगी।

(2) चीन की नवजनवादी क्रान्ति का अनुभव हमें बताता है कि एक एकीकृत और विचारधारात्मक रूप से सुदृढ़ पार्टी ही किसी सर्वहारा क्रान्ति को विजयी बना सकती है और फिर उसे आगे विकसित कर सकती है। यह विचारधारात्मक सुदृढ़ता पार्टी के भीतर हर विजातीय प्रवृत्ति एवं रुझान के विरुद्ध समझौताविहीन संघर्ष के जरिए ही हासिल की जा सकती है। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की पचासवीं जयन्ती के अवसर पर विभिन्न पार्टी मुखपत्रों के सम्पादकीय विभागों द्वारा 1 जुलाई, 1971 को संयुक्त रूप से लिखे गये लेख में कहा गया था : "अगर लाइन सही न हो तो राजनीतिक सत्ता पर कब्जा कर लिये जाने के बाद भी वह हाथ से निकल सकती है। अगर लाइन सही हो तो राजनीतिक सत्ता न होने पर भी उसे प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन एक सही लाइन न तो आसमान से टपक पड़ती है और न ही अपने आप ही शान्तिपूर्ण ढंग से पैदा व विकसित हो जाया करती है, बल्कि यह गलत लाइन की तुलना में मौजूद रहती है और उससे संघर्ष करने में विकसित होती है।" चीनी क्रान्ति की पूरी प्रक्रिया के दौरान चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के भीतर माओ त्से तुङ के नेतृत्व वाली सही लाइन को लगातार दक्षिणपंथी और अतिवामपंथी अवसरवादी लाइनों के खिलाफ संघर्ष करना पड़ा। सही लाइन के सामने कभी छन तू-श्यू की दक्षिणपंथी लाइन तो कभी ली ली-सान की अतिवामपंथी लाइन थी, कभी वाङमिङ की पहले दक्षिणपंथी और बाद में अतिवामपंथी लाइन थी तो कभी चाङ चुन-चाओ की विसर्जनवादी लाइन थी, कभी फङ त-ह्वाए, काओ काङ आदि की दक्षिणपंथी लाइन थी तो कभी ल्यू शाओ-ची की दक्षिणपंथी, संशोधनवादी लाइन थी। दो लाइनों के इस संघर्ष में माओ त्से-तुङ की सही लाइन वाली धारा ने लगातार समझौताहीन संघर्ष चलाकर उन्हें करारी शिकस्त दी और इसी के चलते यह नवजनवादी क्रान्ति को महान सफलता के मुकाम तक पहुँचा सकी। यही नहीं, 1949 की नवजनवादी क्रान्ति के बाद भी चीन की पार्टी में दो लाइनों का यह संघर्ष जारी रहा। माओ के नेतृत्व

में समाजवाद की दिशा में अग्रसर सही लाइन ने संशोधनवादी लाइन के विरुद्ध लगातार संघर्ष किया और चीनी क्रान्ति को पहले ल्यू शाओ-ची, देङ सियाओ पिङ और फिर लिन प्याओ की गलत लाइनों को धूल चटाते हुए महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति (1966-76) के दौरान समाजवादी समाज में वर्ग संघर्ष को जारी रखने और पूँजीवादी पुनर्स्थापना को रोकने का महान सिद्धान्त विकसित करके मार्क्सवादी विज्ञान को एक नयी ऊँचाई तक पहुँचा दिया। पूरी दुनिया और पिछड़े हुए चीन में अनुकूल वर्ग-शक्ति-संतुलन का लाभ उठाकर 1976 में चीन में नया पूँजीपति वर्ग भले ही सत्ता पर काबिज हो गया हो, महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की शिक्षाएँ भावी सर्वहारा क्रान्तियों के लिए हमेशा प्रासंगिक बनी रहेंगी। चीन की क्रान्ति इस मुकाम तक पहुँचने में कामयाब रही, क्योंकि वहाँ की पार्टी ने विजातीय लाइनों के विरुद्ध कभी भी समझौते का रुख नहीं अपनाया। चीनी क्रान्ति की यह बुनियादी शिक्षा है कि दक्षिणपंथी और अतिवामपंथी– इन दोनों प्रवृत्तियों के विरुद्ध समझौताहीन संघर्ष करने वाली कम्युनिस्ट पार्टी ही सर्वहारा क्रान्ति को विजयी बना सकती है। हमें एकता बनाने के लोभ में कभी भी विजातीय प्रवृत्तियों से समझौता नहीं करना चाहिए और एकदम धारा के विरुद्ध तैरते हुए भी सही लाइन पर अविचल रहना चाहिए।

(3) माओ ने बार-बार इस सच्चाई पर बल दिया था कि मार्क्सवाद-लेनिनवाद सकता।

(4) चीन की नवजनवादी क्रान्ति ने जनदिशा की अपरिहार्यता को प्रतिपादित करने के साथ ही उसके नये-नये आयामों को भी उद्घाटित किया। स्वयं चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने ऊपर उल्लिखित अपने समाहारमूलक निबंध में लिखा है : "जनदिशा पर कायम रहना जरूरी है। जनसमुदाय पर भरोसा और विश्वास रखना और उसे पूर्ण रूप से आन्दोलित करना, **'जनसमुदाय से लेकर जन-समुदाय को ही लौटा देना', 'जनता के विचारों को एकत्र कर उनका निचोड़ निकालना', 'उसके बाद जन-समुदाय के बीच जाना, उन विचारों को कार्यान्वित करना'**–यह हमारी पार्टी के सभी कामों की बुनियादी लाइन है। हम **स्वतंत्रता व पहलकदमी और स्वावलम्बन** के निर्देशक उसूलों पर इसलिए डटे रहते हैं कि हम इस बात पर पक्का विश्वास रखते हैं कि 'जनता, **और केवल जनता ही दुनिया के इतिहास का निर्माण करने वाली प्रेरक शक्ति होती है।'**

(5) मंजिल चाहे जनवादी क्रान्ति की हो या समाजवादी क्रान्ति की, वह तभी सफल हो सकती है जब उसे नेतृत्व देने वाली कम्युनिस्ट पार्टी जनवादी केन्द्रीयता के सिद्धान्त पर–यानी जनवाद पर आधारित केन्द्रीयता और केन्द्रीयता के मार्गदर्शन में जनवाद के सिद्धान्त पर–अटल हो। सोवियत समाजवादी क्रान्ति के विकास के दौरान विकसित इस पार्टी-सिद्धान्त को चीन की नवजनवादी क्रान्ति ने एकबार फिर सही सिद्ध किया और आगे विकसित किया। ऊपर उल्लिखित चीनी पार्टी के निबंध में यह स्पष्ट बताया गया है : "हमें पार्टी के भीतर और बाहर एक ऐसी राजनीतिक स्थिति तैयार करनी चाहिए जिसमें केन्द्रीयता के साथ जनवाद हो, अनुशासन के साथ-साथ आजादी हो, और एकीकृत इरादे के साथ-साथ व्यक्तिगत जहनी सुकून और सजीवता व स्फूर्ति हो। हमारी पार्टी एक जुझारु पार्टी है, बिना केन्द्रीयता, अनुशासन और एकीकृत इरादे के वह दुश्मन को पराजित नहीं कर सकती। मगर जनवाद के बिना सही केन्द्रीयता नहीं हो सकती। इसलिए कामरेड माओ त्से तुङ हमेशा "मेरी ही चलती है" वाले तौर-तरीके का विरोध करते हैं और "सब लोगों को बोलने दो" वाले तरीके का अनुमोदन करते हैं तथा झूठ बोलने का विरोध करते हैं और सच कहने का अनुमोदन करते हैं। वे साहस के साथ आलोचना व आत्मालोचना करने के सर्वहारा क्रान्तिकारी कार्य को उत्तराधिकारियों के लिए शतों में से एक समझते हैं। हमें चाहिए कि पार्टी की परम्परागत जनवादी कार्यशैली का विकास करें, अकसर आलोचना व आत्मालोचना करें, सच्चाई पर कायम रहें और गलतियों का सुधार करें।"

(6) चीन की नवजनवादी क्रान्ति की यह शिक्षा आज भी प्रासंगिक है कि जनता के सभी वर्गों के एक संयुक्त मोर्चे के निर्माण के बिना क्रान्ति कभी भी सफल नहीं हो सकती। आज फर्क सिर्फ यह है कि जनवादी क्रान्ति से अलग, समाजवादी क्रान्ति की मंजिल में पूँजीपति भूस्वामी संयुक्त मोर्चे के भागीदार न होकर क्रान्ति के शत्रु हैं। अब मोर्चा चार वर्गों का नहीं बल्कि तीन वर्गों का होगा जिसमें भी मध्यम वर्ग व मध्यम किसान ढुलमुल संश्रयकारी के रूप में ही शामिल होंगे। लेकिन समाजवादी क्रान्ति के पक्षधर वर्गों के संयुक्त मोर्चे के बिना सर्वहारा वर्ग अकेले क्रान्ति नहीं कर सकता।

(7) चीन की नवजनवादी क्रान्ति ने इस सार्वभौमिक सच्चाई को एकबार फिर सिद्ध किया कि शासक वर्ग से केवल शस्त्रबल से ही सत्ता छीनी जा सकती है। शान्तिपूर्ण संक्रमण कभी भी संभव नहीं। ऐसी बातें करने वाले सभी संशोधनवादी और संसदमार्गी क्रान्ति के शत्रु हैं। हमें संशोधनवाद की हर किस्म के विरुद्ध निरन्तर समझौताविहीन संघर्ष करना चाहिए। हमें सदैव यह याद रखना चाहिए कि वर्ग-संघर्ष के निम्नतर रूपों को विकसित होते हुए निर्णायक सशस्त्र संघर्ष की दिशा में ही आगे बढ़ना होता है। सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी इस बात पर हमेशा ध्यान रखती है कि मेहनतकश अवाम को, क्रान्ति के विकास की एक सुनिश्चित मंजिल पर पहुँचकर, शस्त्रबद्ध करना ही होता है। लेकिन बिना व्यापक जनता को जागृत, लामबन्द और संगठित किये, मुट्ठीभर बहादुर क्रान्तिकारियों द्वारा सशस्त्र संघर्ष छेड़ने की हर कोशिश "वामपंथी" दुस्साहसवादी बचकानेपन के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होती और यह क्रान्ति के लिए आत्मघाती होती है। जनदिशा को तिलांजलि देकर क्रान्ति की सफलता की कामना हवाई उड़ान से अधिक कुछ भी नहीं होती।

□

हम इस सच्चाई से मुँह नहीं मोड़ सकते कि विगत शताब्दियों की सर्वहारा क्रान्तियों की पराजय के बाद दुनिया विगत तीन दशकों से विश्वव्यापी प्रतिगमन के गहन अँधेरे में जी रही है और क्रान्ति की लहर पर प्रतिक्रान्ति की लहर प्रचण्ड रूप से हावी बनी हुई है। लेकिन यही मानव सभ्यता के इतिहास का अंत नहीं है। पूँजीवाद अजर-अमर नहीं है। वह आज भी अन्तकारी बीमारियों से ग्रस्त है और सिर्फ जड़ता की शक्ति से जीवित है। अतीत में भी क्रान्तियाँ बार-बार पराजित होकर धूल-राख से पुनर्जीवित होकर उठ खड़ी होती रही हैं और पुराने युग का अवसान और नये युग का सूत्रपात होता रहा है। यही समाज-विकास का बुनियादी नियम है। विश्व पूँजीवाद के अभूतपूर्व ढाँचागत संकट यह संकेत दे रहे हैं कि यह शताब्दी सर्वहारा वर्ग और बुर्जुआ वर्ग के बीच के विश्व-ऐतिहासिक महासमर के दूसरे और निर्णायक चक्र की शताब्दी है। यह सर्वहारा क्रान्ति के निर्णायक विजय की शताब्दी है।

लेकिन इसके लिए जरूरी है कि दुनिया भर में सक्रिय, बिखरी हुई, सर्वहारा वर्ग की हरावल ताकतें, चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की ही तरह साहस के साथ, अपने देश-काल की परिस्थितियों का अध्ययन करें, अतीत की क्रान्तियों से कार्यक्रम और नारे उधार लेने तथा लकीर पीटने के बजाय उनके विचारधारात्मक-राजनीतिक सारतत्व को आत्मसात करें और अपने-अपने देशों में एकीकृत क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी के पुनर्निर्माण एवं पुनर्गठन की दिशा में दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ें। इस सन्दर्भ में चीनी क्रान्ति के उपरोक्त अनुभवों और शिक्षाओं का उनके लिए विशेष और अनिवार्य महत्त्व है। •

"वामपन्थी" ट्रेड यूनियनों का 'भारत बन्द'–संघर्ष की एक और रस्म अदायगी

(पेज 1 का शेष)

सार्वजनिक और अन्य संगठित क्षेत्र की मजदूर आबादी के संघर्ष की एक कारगर रणनीति बनाकर शासक वर्गों के मंसूबों को जबर्दस्त चुनौती दी जा सकती थी और मजदूरों के अनेक अधिकारों की हिफाजत की जा सकती थी। बीमा-बैंक, रेलवे, दूरसंचार व डाक विभाग के कर्मचारियों को देश की विशाल असंगठित मजदूर आबादी की तुलना में सफेद कॉलर वाली मजदूर आबादी कहा जा सकता है। यह भी सच है कि जब भी इनकी यूनियनों ने संघर्ष का कोई आह्वान किया यह आबादी संघर्ष में शामिल हुई है। लेकिन नेतृत्व ने आम कर्मचरियों से संघर्ष के नाम पर सिर्फ कदमताल कराया। संघर्ष की कभी कोई निरन्तरता नहीं रही। अलग-अलग सेक्टरों की छिटपुट हड़तालों या बीच-बीच में 'भारत बन्द' के आयोजन शासक वर्गों के लिए कोई चुनौती नहीं बन सकते।

पिछले डेढ़ दशक में संघर्ष के नाम पर होने वाले इस पाखण्ड और कदमताल का नतीजा यह हुआ है कि सार्वजनिक क्षेत्र की अधिकांश मजदूर आबादी अन्दर ही अन्दर निराश हो चुकी है और अब नई आर्थिक नीतियों की दिशा उलटने के बारे में उसे कोई उम्मीद नहीं रह गयी है। दूसरे लफ्फाजी-पाखण्डी नेतृत्व ने उनके सामने कभी संघर्ष का दूरगामी राजनीतिक परिप्रेक्ष्य भी नहीं रखा कि आम कर्मचारी तात्कालिक पराजय से सबक लेकर नये सिरे से संघर्ष की तैयारियों के बारे में सोच सकें। इस अर्थ में इन संसदीय वामपन्थी पार्टियों ने देशी पूँजीवाद की विशेष रूप से सेवा की है कि देश की मजदूर आबादी के एक महत्त्वपूर्ण हिस्से को निराश कर यथास्थिति को स्वीकार कर लेने की मानसिकता में पहुँचा दिया है।

आज वास्तविकता यह है कि भूमण्डलीकरण की आर्थिक नीतियों का विरोध केवल पुराने सार्वजनिक क्षेत्र के ढाँचे को बचाने की जमीन पर नहीं किया जा सकता। यह संघर्ष का सुधारवादी परिप्रेक्ष्य है। खुले पूँजीवाद का विकल्प पुराना राजकीय इजारेदार पूँजीवाद नहीं हो सकता। आज मजदूर वर्ग को उत्पादन और वितरण की समूची पूँजीवादी प्रणाली को ही चुनौती देते हुए समाजवाद के लक्ष्य और क्रान्तिकारी राजनीतिक परिप्रेक्ष्य को सामने रखकर संघर्षों में उतरना होगा। जब हम इस क्रान्तिकारी परिप्रेक्ष्य को सामने रखकर संघर्षों में उतरेंगे तभी आज जो हासिल है उसे भी कारगर ढंग से बचा सकते हैं, भविष्य के फैसलाकुन संघर्ष की ओर आगे बढ़ सकते हैं और सार्वजनिक क्षेत्र की संगठित मजदूर आबादी को भी हार और निराशा की मानसिकता से उबार सकते हैं। वामपन्थ का बिल्ला लगाकर घूमने वाली संसदमार्गी पार्टियाँ और उनसे जुड़ी यूनियनों का नेतृत्व संघर्ष का यह क्रान्तिकारी परिप्रेक्ष्य मजदूर वर्ग के सामने रख ही नहीं सकता। सच बात तो यह है कि मौजूदा पूँजीवादी ढाँचे में उनकी असली भूमिका ही यही है कि वे मजदूर वर्ग की आँखों में धूल झोंकती रहें और उनके सामने संघर्ष का क्रान्तिकारी परिप्रेक्ष्य उभरने ही न दिया जाये। इन पार्टियों की इसी भूमिका के चलते इन्हें पूँजीवाद की एक सुरक्षा पंक्ति कहा जाता है।

साम्प्रदायिक शक्तियों से जमीनी स्तर पर संघर्ष के लिए मेहनतकश वर्ग को वर्गीय आधार पर संगठित करने की मशक्कती कार्रवाइयों के बजाय जोड़-तोड़ के सहारे सरकार से बाहर रखने की लाइन भी एक बहुत बड़ी धोखाधड़ी है। इसी धोखाधड़ी के सहारे ये वामनामधारी पार्टियाँ यूपीए सरकार को बचाये हुए हैं।

आज भूमण्डलीकरण की नीतियों का वास्तविक विरोध समूचे पूँजीवादी ढाँचे को चुनौती देकर ही हो सकता है। देश की मेहनतकश आबादी को संगठित करते समय इसी क्रान्तिकारी परिप्रेक्ष्य को सामने रखना होगा। देशी व विदेशी पूँजी की मिली-जुली लूट के तंत्र के खिलाफ केवल तभी फैसलाकुन संघर्ष की ओर बढ़ा जा सकता है जिससे उत्पादन, राजकाज और समाज के पूरे ढाँचे पर मेहनतकश अवाम का नियंत्रण कायम हो सके और शोषण-उत्पीड़न से मुक्त नया समाज बनाया जा सके।

अमेरीकी डॉलर का प्रभुत्व

(पेज 10 का शेष)

डॉलर है, जिसके अलावा 89 अरब डॉलर एक मुक्त अफगान-ईराक युद्ध के लिए अलग है। वे यह भी नहीं समझ सकते कि मार्च 2005 में अमेरिका पर राष्ट्रीय कर्ज 7,789 अरब डॉलर था जो दो-तिहाई राष्ट्रीय उत्पाद के बराबर तो है ही बल्कि 2.3 अरब डॉलर प्रतिदिन के हिसाब से बढ़ भी रहा है। इस समय प्रत्येक अमेरिकी के सिर पर 25,000 डॉलर का राष्ट्रीय कर्ज है जो उसके निजी कर्जों के अतिरिक्त है।

वर्तमान अमेरीकी आयात की वृद्धि दर निर्यात की वृद्धि दर से 60 प्रतिशत अधिक है।

अमेरिकी बजट घाटे की भरपाई प्रायः विदेशी केन्द्रीय बैंक अपने बढ़ते विदेशी मुद्रा भण्डार–अपनी मुद्रा को बदल कर डॉलर द्वारा करते हैं। इस प्रकार कम लाभ की कीमत पर अपनी मुद्रा का स्थायित्व सुनिश्चित करते हैं। न्यूयार्क यूनीवर्सिटी के विद्वान नोरिएल रूबिनी के अनुसार पिछले दो वर्षों के दौरान बजट घाटे की भरपाई तीन-चौथाई चीन और शेष अन्य एशियाई बैंकों ने वित्त पोषित किया था। किन्तु अगर यह सप्लाई बंद हो जाए तो भयावह नतीजे होंगे। इसके आसार नजर आने लगे हैं।

अब डॉलर को चुनौती मिलने लग गई है। गैर-यूरोपीय देश भी यूरो को रिजर्व करेंसी के रूप में अपनाने लगे हैं। वर्ष 2000 में ईराक ने अपने रिजर्व को यूरो में बदल लिया जिसकी कीमत उन्हें सत्ता विस्थापन द्वारा देनी पड़ी। अब ईरान और उत्तरी कोरिया भी यूरो को अपनाने लगे हैं। यह अकारण नहीं है कि जॉर्ज बुश को बुराई की धुरी इन्हीं देशों में नजर आ रही है। अब तो अमरीकी हस्तक्षेप से क्रुद्ध ह्यूगो चावेज ने वेनेजुएला के तेल व्यापार के बड़े हिस्से को डॉलर से परे कर दिया है। चीन, रूस, ताइवान और दक्षिणी कोरिया भी अपनी परिसम्पत्तियाँ डॉलर के बजाए आंशिक रूप से यूरो में रखने की योजनाएँ बना रहे हैं। अगर ऐसा होता है तब अमरीकी जनता को साम्राज्यवाद की असली कीमत पता चलेगी। तभी वे जान पाएंगे कि उनके हुक्मरानों ने उनका भविष्य बेचकर उसके न केवल हथियार गढ़वा लिए हैं बल्कि उन्हीं हथियारों से हत्याएँ अंजाम दे रहे हैं।

अमेरिकी जनता इस छल के खिलाफ अगर उठ खड़ी हुई तो मौजूदा साम्राज्यवादी तन्त्र ढहना प्रारम्भ हो सकता है। किन्तु साम्राज्य किसी एक कारण से ढहने के बजाय कई कारणों के समन्वित प्रभावों से ढहते हैं। इस बार इराक पर आक्रमण ने इस महाशक्ति के आर्थिक मर्मस्थलों को तो उजागर कर ही दिया। यह भी जगजाहिर कर दिया है कि यह महाशक्ति उधार के धन और उधार के समय द्वारा अपनी अस्तित्व रक्षा के लिए संघर्षरत है।

(दीवार पत्रिका "मुक्तिबोध' पन्तनगर, सितम्बर 2005 से साभार)

तेल पूल घाटे का रोना...

(पेज 1 का शेष)

घाटे का रोना बरकरार है।

तो क्या वाकई तेल घाटा है ? इसके बावजूद कि दुनिया के कई देशों के मुकाबले भारत में तेल सबसे महँगा बिकता है ? जबकि अन्तरराष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल की कीमतें अगस्त माह में 70 डालर प्रति बैरल से घटकर वर्तमान में 63 डालर प्रति बैरल हो चुकी हैं। फिर घाटा बढ़ कैसे रहा है ?

दरअसल सरकार पेट्रोल और डीजल की फुटकर कीमतों में 50 फीसदी से ज्यादा कर के रुप में वसूलती है। ये कर सीमा शुल्क, उत्पाद शुल्क और बिक्री कर के रुप में है। सच यह है कि सरकार जितनी सब्सिडी देती है उसका बड़ा हिस्सा उपभोक्ताओं से कर के रुप में वसूल लेती है। यदि सरकार इन टैक्सों को खत्म कर दे तो पेट्रोल 17.51 रुपये व डीजल 18.53 रुपये प्रति लीटर पड़ेगा। यही नहीं, पिछली बार जब सरकार ने तेल की कीमतें बढ़ाई थीं, तब अन्तरराष्ट्रीय बाजार में मूल्य वृद्धि का हिस्सा महज 70 पैसे था। जबकि सरकारी तेल शोधक कम्पनियों ओ एन. जी. सी. और आई. ओ. सी. द्वारा कच्चे तेल से होने वाली 5400 करोड़ रुपये की आमदनी का उपयोग इस वृद्धि से होने वाले फर्क को सरकार पाट सकती थी।

एक गौरतलब तथ्य यह भी है कि पिछले तीन वर्षों में अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर कच्चे तेल की कीमतों में बढ़ोत्तरी के बावजूद सरकार की आमदनी बढ़ी है। वर्ष 2001-2002 में सरकार को महज उत्पाद शुल्क के तौर पर जहाँ 28 हजार करोड़ रुपये मिले थे, वहीं वर्ष 2004-2005 में इस मद में आमदनी बढ़कर 43662 करोड़ रुपये हो गयी। सरकार जो भी कर लेती है वह प्रतिशत में निर्धारित होने के कारण जो भी वृद्धि होती है उसका करों के रूप में फायदा भी बढ़ जाता है।

एक और बाजीगरी देखिये। अन्तरराष्ट्रीय बाजार की तुलना में भारत में तेल शोधित करने का खर्च कम है। अब इसका फायदा तो उपभोक्ता को मिलना चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं है। सन् 2002 में तत्कालीन राजग सरकार ने निजी कम्पनियों के हित में तेल की कीमतों को निर्धारित करने का पुराना तरीका बदल दिया। फिर क्या था, इसका बड़ा लाभ तेल शोधन में लगी रिलायंस और एस्सार जैसी निजी कम्पनियों को मिलने लगा। यही नहीं, इधर सरकार घाटे का रोना रोते हुए सब्सिडियाँ कम करके पेट्रो उत्पाद की कीमतें बढ़ाती जा रही है, उधर निजी कम्पनियों को निर्यात प्रोत्साहन के नाम पर प्रतिवर्ष 1200 करोड़ रुपये के ड्यूटी ड्रॉ बैक भी दे रही है। जबकि तेल घाटे का पूरा बोझ सरकार सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियों पर डाल रही है। इससे सरकार को एक और लाभ यह मिलेगा कि अन्ततः वह घाटा दिखाकर इन कम्पनियों का निजीकरण आसानी से कर सकेगी।

इस प्रकार सरकार जहाँ घाटे का हवा खड़ा करके पेट्रोलियम उत्पादों की कीमतें बढ़ाती जा रही हैं, सार्वजनिक कम्पनियों को घाटे की ओर धकेल रही हैं, वहीं निजी कम्पनियों का लाभ बढ़ाने में मदद कर रही है। और सरकार की इस धोखा-धड़ी और बाजीगरी का, विरोध की नौटंकी के बीच, संसदीय वामपंथी समर्थन किये जा रहे हैं।

— आकाश कुमार

कैटरीना ने बेनकाब किया पूँजीवाद का जनद्रोही चेहरा

(पेज 12 से आगे)

आलम में राष्ट्रपति अपने फार्म में बैठकर नीरो की तरह बाँसुरी बजा रहा हो पर जब राहत कार्यों और पुनर्निमाण की योजनाओं का ठेका निजी कम्पनियों को देने का समय आता है तब तंत्र एकदम मुस्तैदी से अपनी भूमिका अदा करता है। पुनर्निवास और पुनर्निमाण के लिए निजी कम्पनियों को मुक्त हस्त से धन बाँटा जाता है। पहले जहाँ काले लोगों की बहुलता और उनके गरीब व पिछड़े होने के कारण न्यू ऑर्लियन्स को निवेश के योग्य और इसीलिए पूर्व तैयारियों के योग्य नहीं समझा गया था। तूफान के बाद हर कम्पनी की गिद्ध दृष्टि उधर ही लगी हुई है।

कैटरीना का आना बड़ी कम्पनियों के लिए बिल्ली के भाग्य से छींका टूटने के समान था। शहर के पुनर्निमाण के खर्च का आकलन लगभग 1000 अरब डॉलर के बराबर है। आकस्मिक राहत के लिए अमेरिकी कांग्रेस ने 105 अरब डॉलर की मंजूरी दे दी है। उसके बाद व्हाइट हाऊस ने 500 अरब डॉलर और राशि की मंजूरी और दे दी है। ऐसे में हेली बर्टन–उपराष्ट्रपति डिक चेनी जिसके अध्यक्ष रह चुके हैं–जैसी कम्पनियों की चाँदी ही चाँदी है। और लोग भी इस बात को समझते हैं। तभी तो कैटरीना के बाद से इस कम्पनी के शेयर मूल्य में 10 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इराक युद्ध से भी इस कम्पनी ने खूब मुनाफा कमाया और आगे भी ऐसा करती रहेगी। इसके अलावा और भी कई बड़े कार्पोरेशन हैं जो इस लूट में अपना हिस्सा लेने के लिए जीभ निकाले खड़े हैं।

अमेरिकी शासक वर्ग मुनाफे के लिए इतना लालची हो चुका है कि अपने लोगों की तबाही-बर्बादी भी उसके अन्दर मानवीय भावनाएँ जगा पाने में असमर्थ हैं। अमेरिका में स्वास्थ्य और शिक्षा जैसी बुनियादी सुविधाएँ इतनी महँगी हैं कि आम आदमी और खासकर न्यू ऑर्लियन्स की गरीब-बेरोजगार काली आबादी सारी सुविधाएँ और तकनीक होने के बावजूद भी उसका लाभ नहीं उठा पाती। इसके बावजूद जब क्यूबा जैसे छोटे पड़ोसी देश ने अपने 1000 प्रशिक्षित डाक्टर और 36 टन दवाएँ न्यू ऑर्लियन्स भेजने की घोषणा की तो अमेरिकी सरकार ने इस पर कोई प्रतिक्रिया नहीं जताई, यहाँ तक कि मदद देने का प्रस्ताव करने वाले देशों की सरकारी सूची में क्यूबा का नाम भी नहीं था जबकि क्यूबा के डाक्टर हवाना एयरपोर्ट के नजदीक किसी भी समय उड़ान भरने के लिए तैयार बैठे थे। ध्यान रहे कि हवाना से न्यू ऑर्लियन्स के बीज महज चन्द घण्टों की हवाई दूरी है। सरकार की तरफ से यह बेशर्म झूठ बोला गया कि न्यू ऑर्लियन्स में क्यूबा के डाक्टरों की मदद की कोई खास आवश्यकता नहीं थी, जबकि सच्चाई यह है कि तूफान के बाद न्यू ऑर्लियन्स में अमेरिकी सेना की टुकड़ियों को पहुँचने में ही 48 घण्टे लग गये।

अपने को दुनिया में सुख-समृद्धि और लोकतंत्र का माडल कहने वाले अमेरिका की जरा दूसरे मुल्कों से तुलना करके देखें तो स्थिति की गम्भीरता का अहसास और ज्यादा हो सकेगा। क्यूबा जैसे छोटे से देश जिसे बर्बाद करने में अमेरिका ने कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी है में अक्सर ऐसे तूफान आते रहते हैं। सितम्बर 2004 में कैटरीना जैसे तूफान के आने पर डेढ़ करोड़ से भी ज्यादा क्यूबाइयों को सुरक्षित स्थानों पर सरकारी मदद से पहुँचाया गया। हालाँकि 20,000 घर तबाह हुए पर एक भी आदमी को जान का नुकसान नहीं हुआ। 1995 के बाद से एक दर्जन से भी ज्यादा भयंकर तूफान क्यूबा में आ चुके हैं मगर जान और माल का नुकसान न्यूनतम रहा है। क्यूबा की समाजवादी सरकार अमेरिकी शासक वर्ग की तरह अपनी गरीब जनता को भाग्य के भरोसे नहीं छोड़ती है। एक रिपोर्ट के अनुसार कैटरीना से न्यू ऑर्लियन्स की सुरक्षा करने के लिए महज 140 अरब डॉलर पर्याप्त थे। इतनी राशि अमेरिका इराक में हर पखवाड़े खर्च करता है।

तथ्य चीख-चीख कर गवाही दे रहे हैं। तस्वीरें हालात की विभीषिका दर्शा रही हैं। दुनिया के सबसे शक्तिशाली देश में नस्लवाद, रंगभेद, गरीबी और सरकारी संवेदनहीनता जैसी बीमारियाँ फल-फूल रही हैं। पूँजीवादी कचरे के ढेर से जनता के लिए कुछ भी उपयोगी प्राप्त कर पाना नामुमकिन है। तीसरी दुनिया और विकासशील देशों की मेहनतकश जनता तो यह सच्चाई पहले से जानती है, पर अब पूँजी के महल में रहने वाली आम जनता भी इसे महसूस करने लगी है। मुनाफे की हवस के वशीभूत पूँजीवादी-साम्राज्यवादी शक्तियाँ अपने बुनियादी इन्सानी सरोकार भी भूलती जा रही हैं। अगर उनका नाश नहीं किया गया तो वे मनुष्यता का भविष्य अन्धकारमय बना देंगी।

— जयपुष्प

क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं की शिक्षा

माओ त्से-तुङ

इस बात की गारन्टी करने के लिए कि हमारी पार्टी व हमारा देश अपना रंग न बदलें, हमें न सिर्फ सही दिशा और सही नीतियाँ अपनानी चाहिए बल्कि दसियों लाख ऐसे उत्तराधिकारियों को भी प्रशिक्षित करना चाहिए और उनका पालन-पोषण करना चाहिए जो सर्वहारा क्रान्ति के कार्य को आगे बढ़ाना जारी रखेंगे।

अन्ततोगत्वा, सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी कार्य के उत्तराधिकारियों को प्रशिक्षित करने का सवाल यह है कि क्या ऐसे लोग होंगे या नहीं जो सर्वहारा क्रान्तिकारियों की पुरानी पीढ़ी द्वारा शुरू किए गए मार्क्सवादी-लेनिनवादी क्रान्तिकारी कार्य को आगे बढ़ाना जारी रखेंगे, क्या पार्टी व राज्य का नेतृत्व सर्वहारा क्रान्तिकारियों के हाथ में रहेगा या नहीं, क्या हमारी आने वाली पीढ़ियाँ मार्क्सवाद-लेनिनवाद द्वारा दिखाए गए सही रास्ते पर आगे बढ़ना जारी रखेंगी या नहीं, अथवा दूसरे शब्दों में कहा जाय तो क्या हम चीन में ख्रुश्चेव के संशोधनवाद के उदय की सफलतापूर्वक रोकथाम कर सके हैं या नहीं ? संक्षेप में, यह एक बेहद महत्त्वपूर्ण सवाल है, हमारी पार्टी व हमारे देश के लिए जिन्दगी-मौत का सवाल है। यह सवाल सर्वहारा क्रान्तिकारी कार्य के लिए सौ साल तक, हजार साल तक, यही नहीं दस हजार साल तक एक बुनियादी महत्त्व का सवाल रहेगा। सोवियत संघ में जो परिवर्तन हुए हैं उनके आधार पर साम्राज्यवादी फरिश्ते यह आस लगाए बैठे हैं कि चीनी पार्टी की तीसरी या चौथी पीढ़ी में "शान्तिपूर्ण विकास" हो जाएगा। हमें साम्राज्यवादियों की इन भविष्यवाणियों को धूल में मिला देना चाहिए। अपने सर्वोच्च संगठनों से लेकर बिल्कुल बुनियादी पातों तक, हमें हर जगह क्रान्तिकारी कार्य के उत्तराधिकारियों के प्रशिक्षण और पालन-पोषण की ओर लगातार ध्यान देना चाहिए।

सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी कार्य के योग्य उत्तराधिकारी बनने के लिए कौन-कौन सी शर्तें पूरी करनी होती हैं?

उन्हें सच्चे मार्क्सवादी-लेनिनवादी होना चाहिए तथा ख्रुश्चेव की तरह नहीं होना चाहिए जो मार्क्सवाद-लेनिनवाद का जामा पहने संशोधनवादी है।

उन्हें ऐसे क्रान्तिकारी होना चाहिए जो चीन और समूची दुनिया की जनता की भारी बहुसंख्या की तन-मन से सेवा करें, तथा ख्रुश्चेव की तरह नहीं होना चाहिए जो अपने देश के विशेषाधिकार-प्राप्त तबके के मुट्ठीभर लोगों और विदेशी साम्राज्यवाद व प्रतिक्रियावाद के हितों की सेवा करता है।

उन्हें ऐसे सर्वहारा राजनीतिज्ञ होना चाहिए जो लोगों की भारी बहुसंख्या के साथ एकताबद्ध होने और काम करने की क्षमता रखते हों उन्हें न सिर्फ ऐसे लोगों के साथ एकता कायम करनी चाहिए जो उनके विचारों से सहमत हों, बल्कि ऐसे लोगों के साथ भी एकता कायम करने में निपुण होना चाहिए जो उनके विचारों से सहमत न हों, यहाँ तक कि ऐसे लोगों के साथ भी एकता कायम करने में निपुण होना चाहिए जो पहले उनका विरोध कर चुके हों और अब गलत साबित हो चुके हों। लेकिन उन्हें ख्रुश्चेव जैसे कैरियरवादियों और षड्यंत्रकारियों से खास तौर पर सतर्क रहना चाहिए तथा इस प्रकार के बुरे तत्वों को पार्टी व राज्य का नेतृत्व किसी भी स्तर पर नहीं हथियाने देना चाहिए।

उन्हें पार्टी की जनवादी केन्द्रीयता को लागू करने के लिहाज से आदर्श बन जाना चाहिए, "जन-समुदाय से लेकर जन-समुदाय को ही लौटा देने" के सूत्र के आधार पर नेतृत्व करने के तरीके में माहिर बन जाना चाहिए, तथा जनवादी कार्यशैली अपना लेनी चाहिए और दूसरों की बात अच्छी तरह सुननी चाहिए। उन्हें ख्रुश्चेव की तरह नहीं होना चाहिए जो पार्टी की जनवादी केन्द्रीयता का उल्लंघन करता है, मनमाने जुल्म ढाता है, साथियों पर आकस्मिक प्रहार करता है अथवा स्वेच्छाचारी और तानाशाही तरीके से काम करता है।

उन्हें नम्र और विवेकशील होना चाहिए तथा हेकड़ी और जल्दबाजी से बचना चाहिए; उन्हें आत्म-आलोचना की भावना से ओतप्रोत होना चाहिए तथा उनके अन्दर अपने काम की त्रुटियों पर कमियों को सुधारने का साहस होना चाहिए। उन्हें ख्रुश्चेव की तरह नहीं होना चाहिए जो अपनी तमाम गलतियों पर पर्दा डालता है तथा तमाम श्रेय खुद लेकर तमाम दोष दूसरों के मत्थे मढ़ देता है।

सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी कार्य के उत्तराधिकारी, जन-संघर्षों के दौरान आगे आते हैं तथा क्रान्ति के महान तूफानों में तपते-मंजते हैं। यह जरूरी है कि जन-संघर्षों के लम्बे दौर में कार्यकर्ताओं को जाँचा-परखा जाय तथा उत्तराधिकारियों को चुना जाय और प्रशिक्षित किया जाय।

"ख्रुश्चेव का नकली कम्युनिज्म और दुनिया के लिए उसके ऐतिहासिक सबक" में उद्धृत (14 जुलाई 1964), अंग्रेजी संस्करण, पृष्ठ 72-74

हमारे पार्टी-संगठनों को पूरे देश में फैला दिया जाना चाहिए, तथा हमें एक उद्देश्य से प्रेरित होकर दसियों हजार कार्यकर्ताओं और सैकड़ों बेहतरीन नेताओं को प्रशिक्षित करना चाहिए। इन कार्यकर्ताओं और नेताओं में मार्क्सवाद-लेनिनवाद की समझ होनी चाहिए, राजनीतिक दूरदर्शिता होनी चाहिए, काम करने की योग्यता होनी चाहिए, आत्म-त्याग की भावना होनी चाहिए, समस्याओं को स्वतंत्र रूप से हल करने की क्षमता होनी चाहिए, तथा उन्हें कठिनाइयों में अडिग रहने और राष्ट्र, वर्ग और पार्टी की सेवा तन-मन से और वफादारी से करने वाला होना चाहिए। इन कार्यकर्ताओं व नेताओं के जरिए ही पार्टी अपने सदस्यों और आम जनता के साथ सम्बन्ध स्थापित करती है, तथा आम जनता पर उनके सुदृढ़ नेतृत्व के भरोसे ही पार्टी अपने दुश्मन को परास्त कर सकती है। ऐसे कार्यकर्ताओं और नेताओं को स्वार्थपरकता, व्यक्तिगत पराक्रमवाद, व्यक्तिगत प्रसिद्धि की अभिलाषा, आलसीपन, निष्क्रियता और गर्वपूर्ण संकीर्णतावाद से दूर रहना चाहिए तथा उन्हें निस्वार्थ राष्ट्रीय वीर और वर्ग-वीर बन जाना चाहिए; हमारी पार्टी के सदस्यों, कार्यकर्ताओं और नेताओं से ऐसे ही गुणों और इसी प्रकार की कार्यशैली की माँग की जाती है।

"कोटि-कोटि जनता को जापान-विरोधी राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चे के पक्ष में करने का प्रयत्न करो" (7 मई '937), संकलित रचनाएँ (अंग्रेजी संस्करण), ग्रन्थ 1, पृष्ठ 291

जहाँ एक बार राजनीतिक कार्यदिशा निर्धारित कर दी गई, तो कार्यकर्ता एक निर्णयात्मक तत्व बन जाते हैं। इसलिए योजनाबद्ध तरीके से नए कार्यकर्ताओं की विशाल संख्या को प्रशिक्षित करना हमारा जुझारू कार्य है।

"राष्ट्रीय युद्ध में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की भूमिका" (अक्टूबर 1938), संकलित रचनाएँ (अंग्रेजी संस्करण), ग्रन्थ 2, पृष्ठ 202

कम्युनिस्ट पार्टी की कार्यकर्ताओं से सम्बन्धित नीति में कार्यकर्ताओं को परखने की कसौटी यह होनी चाहिए कि क्या कार्यकर्ता पार्टी की कार्यदिशा को दृढ़तापूर्वक कार्यान्वित करते हैं अथवा नहीं, पार्टी-अनुशासन का पालन करते हैं अथवा नहीं, आम जनता से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं अथवा नहीं, स्वतंत्र रूप से काम करने की क्षमता रखते हैं अथवा नहीं, तथा सक्रिय, परिश्रमी और निस्वार्थ व्यक्ति हैं अथवा नहीं। इसी का मतलब है "नैतिकता और योग्यता के आधार पर नियुक्ति करना"।

वही

कार्यकर्ताओं के सामूहिक उत्पादक श्रम में भाग लेने की व्यवस्था को बनाए रखना जरूरी है। हमारी पार्टी व राज्य के कार्यकर्ता साधारण मेहनतकश हैं, जनता के सिर पर सवार लाट साहब नहीं। सामूहिक उत्पादक श्रम में भाग लेकर, हमारे कार्यकर्ता मेहनतकश जनता के साथ अत्यन्त व्यापक रूप से निरन्तर, घनिष्ठ सम्बन्ध बनाए रखते हैं। यह समाजवादी व्यवस्था के लिए एक बुनियादी महत्त्व का मुख्य कदम है; इससे नौकरशाही को दूर करने तथा संशोधनवाद व कठमुल्लावाद की रोकथाम करने में मदद मिलती है।

"ख्रुश्चेव का नकली कम्युनिज्म और दुनिया के लिए उसके ऐतिहासिक सबक" में उद्धृत (14 जुलाई 1946), अंग्रेजी संस्करण, पृष्ठ 68-69

हमें मालूम होना चाहिए कि कार्यकर्ताओं को कैसे पहचाना जाय। हमें किसी कार्यकर्ता की जिन्दगी के थोड़े से अरसे अथवा उसकी जिन्दगी की किसी एक घटना के आधार पर ही उसके बारे में अपनी राय कायम नहीं कर लेनी चाहिए, बल्कि उसकी जिन्दगी और उसके काम को समूचे रूप में आँकना चाहिए। यह कार्यकर्ताओं को पहचानने का मुख्य तरीका है।

"राष्ट्रीय युद्ध में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की भूमिका" (अक्टूबर 1938), संकलित रचनाएँ (अंग्रेजी संस्करण), ग्रन्थ 2, पृष्ठ 202

हमें यह मालूम होना चाहिए कि कार्यकर्ताओं का अच्छी तरह कैसे उपयोग किया जाय। अन्ततोगत्वा नेतृत्व पर ये दो मुख्य जिम्मेदारियाँ होती हैं : उपायों को खोज निकालना और कार्यकर्ताओं का अच्छी तरह उपयोग करना। योजना बनाना, निर्णय करना तथा आदेश और हिदायतें देना, आदि सभी बातें "उपायों को खोज निकालने" की श्रेणी में आती हैं। इन उपायों को अमल में लाने के लिए हमें कार्यकर्ताओं, को घनिष्ठ रूप से एकताबद्ध करना चाहिए और उन्हें अमल के मैदान में उतरने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए; यह "कार्यकर्ताओं का अच्छी तरह उपयोग करने" की श्रेणी में आता है।

वही

हमें यह मालूम होना चाहिए कि कार्यकर्ताओं की अच्छी तरह देखभाल कैसे की जाय। इसके कई तरीके हैं।

पहले, उनका मार्गदर्शन करना चाहिए। इसका मतलब यह है कि उन्हें अपना काम स्वतंत्र रूप से करने देना चाहिए ताकि उनमें जिम्मेदारी उठाने का साहस पैदा हो जाय, तथा साथ ही उन्हें उचित समय पर हिदायतें भी देनी चाहिए ताकि पार्टी की राजनीतिक कार्यदिशा के मार्गदर्शन में वे अपनी पहलकदमी का पूरा-पूरा इस्तेमाल कर सकें।

दूसरे, उनका स्तर उन्नत करना चाहिए। इसका मतलब यह है कि उन्हें अध्ययन करने का मौका देकर शिक्षित करना चाहिए, ताकि वे अपनी सैद्धान्तिक जानकारी और कार्य-क्षमता को बढ़ा सकें।

तीसरे, उनके काम की जाँच-पड़ताल करनी चाहिए, तथा अपने अनुभवों का निचोड़ निकालने, अपनी उपलब्धियों का विकास करने और गलतियों को सुधारने में उनकी सहायता करनी चाहिए। केवल काम सौंपते जाना और उसकी जाँच-पड़ताल न करना, तथा जब गम्भीर गलतियाँ की जाय सिर्फ तभी उनकी ओर ध्यान देना—यह निश्चय ही कार्यकर्ताओं की देखभाल करने का तरीका नहीं है।

चौथे, जिन कार्यकर्ताओं ने गलतियाँ की हैं उनके प्रति सामान्यतया समझाने-बुझाने का तरीका अपनाना चाहिए, तथा उन्हें अपनी गलतियाँ सुधारने में मदद करनी चाहिए। संघर्ष का तरीका केवल उन्हीं के प्रति अपनाया जाना चाहिए जो गम्भीर गलतियाँ करने के बाद भी निर्देशन का पालन करने से इनकार करते हैं इस सम्बन्ध में धीरज से काम लेना निहायत जरूरी है। लोगों पर बिना सोचे-समझे "अवसरवादी" का बिल्ला लगा देना तथा उनके खिलाफ बिना सोचे-समझे "संघर्ष चलाना" गलत है।

पाँचवे, उनकी कठिनाइयों को दूर करने में मदद करनी चाहिए। जब कभी कार्यकर्ता लोग बीमारी, तंगी अथवा घरेलू या अन्य मुश्किलों की वजह से परेशान हों, तो हमें उनकी यथासम्भव अधिक देखभाल करनी चाहिए।

कार्यकर्ताओं की अच्छी तरह देखभाल करने का यही तरीका है।

वही, पृष्ठ 203

सच्ची एकता के सूत्र में बँधे हुए और जनता के साथ सच्चा सम्पर्क रखने वाले नेतृत्वकारी ग्रुप का निर्माण केवल जन-संघर्ष के दौरान ही कदम-ब-कदम किया जा सकता हैं और उससे अलग रह कर नहीं किया जा सकता। किसी महान संघर्ष की प्रारम्भिक, बीच की और अन्तिम मंजिलों में अधिकांशतः नेतृत्वकारी ग्रुप को शुरू से अन्त तक पूर्णतया अपरिवर्तित नहीं बना रहना चाहिए और न ही वह पूर्णतया अपरिवर्तित बना रह सकता है। संघर्ष के दौरान आगे आने वाले सक्रिय कार्यकर्ताओं को नेतृत्वकारी ग्रुप के उन पुराने सदस्यों का स्थान ग्रहण करने के लिए लगातार तरक्की दी जानी चाहिए, जो उनकी अपेक्षा निम्न स्तर के साबित हुए हैं या जिनका पतन हो चुका है।

"नेतृत्व के तरीके से सम्बन्धित कुछ सवाल" (1 जून 1943), संकलित रचनाएँ (अंग्रेजी संस्करण), ग्रन्थ 3, पृष्ठ 118

अगर हमारी पार्टी के पास पुराने कार्यकर्ताओं के साथ एकता व सहयोग कायम करके काम करने वाले बहुत से नए कार्यकर्ता नहीं होंगे, तो हमारा काम ठप्प हो जाएगा। इसलिए तमाम पुराने कार्यकर्ताओं को चाहिए कि वे नए कार्यकर्ताओं का अत्यन्त उत्साह से स्वागत करें और उनके प्रति अत्यन्त स्नेहपूर्ण आत्मीयता का बरताव करें। निस्सन्देह, नए कार्यकर्ताओं की अपनी कमजोरियां होती हैं। उन्हें क्रान्ति में शामिल हुए बहुत समय नहीं हुआ और उनमें अनुभव की कमी है, तथा उनमें से कुछ लोग अनिवार्य रूप से पुराने समाज की अस्वस्थ विचारधारा के अवशेष, निम्न-पूँजीवादी व्यक्तिवाद की विचारधारा की जूठन अपने साथ लेकर आए हैं पर ऐसी त्रुटियां शिक्षा के जरिए और क्रान्ति की ज्वालाओं में तपकर कदम-ब-कदम दूर हो सकती हैं। नए कार्यकर्ताओं की अच्छाई, जैसा कि स्तालिन ने कहा है, यह है कि वे नई चीजों के प्रति अत्यन्त संवेदनशील होते हैं और इसलिए बड़े ही उत्साही और सक्रिय होते हैं—ये गुण ऐसे हैं जो कुछ पुराने कार्यकर्ताओं में नहीं होते। नए और पुराने कार्यकर्ताओं को एक दूसरे का आदर करना चाहिए, एक दूसरे से सीखना चाहिए और एक दूसरे की अच्छाइयों से सीखकर अपनी कमियों को दूर करना चाहिए, ताकि वे हमारे मुश्तरका कार्य के लिए एकदिल हो सकें और संकीर्णतावादी प्रवृत्तियों से बच सकें।

"पार्टी की कार्यशैली में सुधार करो" (1 फरवरी 1942), संकलित रचनाएँ (अंग्रेजी संस्करण), ग्रन्थ 3, पृष्ठ 47

हमें केवल पार्टी-कार्यकर्ताओं का ही नहीं बल्कि गैरपार्टी कार्यकर्ताओं का भी ध्यान रखना चाहिए। पार्टी के बाहर अनेक सुयोग्य व्यक्ति हैं, जिन्हें नजर-अन्दाज नहीं किया जाना चाहिए। हर कम्युनिस्ट का यह कर्तव्य है कि वह अलगाव और हेकड़ी से दूर रहे तथा गैरपार्टी कार्यकर्ताओं के साथ अच्छी तरह मिलजुल कर काम करे, उनकी सच्चे दिल से सहायता करे, उनके प्रति स्नेहपूर्ण साथियों जैसा बरताव करे, तथा जापान का प्रतिरोध करने और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण करने के महान कार्य में उनकी पहलकदमी का उपयोग करें।

"राष्ट्रीय युद्ध में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की भूमिका" (अक्टूबर 1938), संकलित रचनाएँ (अंग्रेजी संस्करण), ग्रन्थ 2, पृष्ठ 202

सरकारी इजाजत न मिलने के बहाने मुजफ्फरनगर काण्ड के अपराधी बरी

जनविरोधी व्यवस्था में जनता के लिए न्याय नहीं

(बिगुल संवाददाता)

ऊधमसिंह नगर। उत्तर प्रदेश द्वारा मुकदमा चलाने की इजाजत न मिलने की आड़ में मुजफ्फरनगर की विशेष अदालत ने 11 साल पूर्व उत्तराखण्ड राज्य के आन्दोलनकारियों के दमन और कुकृत्य के अपराधी पांचों अधिकारियों को बरी कर दिया। इससे पूर्व इसी अदालत ने विगत पाँच अगस्त को चार दोषी पुलिस कर्मियों को बरी कर दिया था।

उल्लेखनीय है कि अलग राज्य की माँग को लेकर दिल्ली प्रदर्शन के लिए जा रहे उत्तराखण्ड के आन्दोलनकारियों का 1/2 अक्टूबर, 1994 की रात में मुजफ्फरनगर के रामपुर तिराहे पर पुलिस ने लाठियों-गोलियों से भयानक दमन किया था और महिलाओं को बेइज़्ज़त किया था। सी.बी.आई. की रिपोर्ट के मुंताबिक इस लोमहर्षक घटना में छह लोग मौके पर शहीद हो गये, जबकि आन्दोलनकारी राजेश नेगी के शव का आज तक पता नही चल सका। 17 आन्दोलनकारी घायल हुए, चार महिलाओं के साथ दुष्कर्म हुआ, पाँच महिलाओं के जेवरात लूटे गये और उनके साथ यौन शोषण का प्रयास हुआ।

गोलीकाण्ड के मुख्य अभियुक्त तत्कालीन डी.एम. अनन्त कुमार सिंह, एस.एस.पी. राजेन्द्रपाल सिंह, ए.एस.पी. महेश कुमार मिश्रा, सी.ओ. गीता प्रसाद, नैनवाल व जगदीश सिंह को मुलायम सरकार ने मुकदमे के लिए इजाजत न देकर बचा लिया। जबकि एक अन्य अभियुक्त सिपाही सुभाष गिरी की पहले ही हत्या हो चुकी है। एक अन्य अभियुक्त तत्कालीन डी.आई.जी. बुआ सिंह का नाम सी.बी.आई. की फेहरिस्त से पहले ही गायब है।

न्यायालय के इस फैसले के बाद जनान्दोलन की आशंका में उत्तरांचल सरकार इसके ख़िलाफ उच्चतम न्यायालय जाने की घोषणा जरूर कर रही है, लेकिन यह एक ढकोसला है। यह जनता के गुस्से को शान्त करने का एक हथकंडा भर है। राज्य आन्दोलन के दौरान 'मेरी लाश पर उत्तराखण्ड बनेगा' का ऐलान करने वाले मुख्यमंत्री से क्या उम्मीद की जा सकती है? वैसे भी सरकार चाहे उत्तरांचल की हो, उत्तर प्रदेश की या केन्द्र की या फिर किसी भी पार्टी की, सभी अपराधी अधिकारियों को बचाने और दमन का पाटा चलाने के मामले में एक जैसे ही है।

इस फैसले ने उत्तराखण्ड की जनता के जख्म को एक बार फिर कुरेद दिया है और आन्दोलन का समाँ बँधने लगा है। कोर्ट द्वारा बरी किये जाने के बाद वहाँ मौजूद दो आन्दोलनकारी महिलाओं ने अपराधी अधिकारियों की गाड़ियों के आगे लेटकर अपना आक्रोश भी प्रकट किया। कई संगठनों द्वारा राज्य के अलग-अलग हिस्सों में विरोध प्रदर्शन भी हुए। दो अक्टूबर को काला दिवस मनाने और बन्द का आह्वान भी हो चुका है। लेकिन इस बार पहले जैसी बात नहीं है। चल रहा आन्दोलन या तो स्वतःस्फूर्त है, या फिर अपनी डफली, अपना राग की तर्ज पर बँटे-बिखरे रूप में चल रहा है। ऐसे में आन्दोलन के भविष्य पर ही प्रश्नचिह्न लग गया है।

बहरहाल, इस पूरी घटना में पूँजीवादी निजाम के रक्तरंजित चेहरे को एक बार फिर बेनकाब कर दिया है। जनरल डायर की देसी औलादों को बचाने में चुनावी पार्टियों और उनकी सरकारों—चाहे वे सपाई-बसपाई हों, भाजपाई हों अथवा कांग्रेसी—की भूमिका, इन ग्यारह सालों में खुलकर सामने आ चुकी है। दमन के असली सूत्रधार तो ये ही हैं। एक के आदेश से दमन का पाटा चलता है तो दूसरे उसे बचाने की कोशिश करते हैं। इस मामले में वे चोर-चोर मौसेरे भाई हैं।

जलियाँवाला बाग काण्ड की याद ताजा करा देने वाले इस काण्ड के अपराधियों को बरी करके न्यायपालिका ने एक बार फिर यह साबित कर दिया है कि इस लुटेरी, अमानवीय पूँजीवादी व्यवस्था में आम जनता के लिए कहीं न्याय नहीं है। एक बार फिर प्रमाणित हुआ है कि आम जनता के हक-अकूक की आवाज को कुचलने के लिए देश और प्रदेशों की पुलिस व प्रशासनिक व्यवस्था पूरी तरह चाक-चौबन्द है और न्यायपालिका से लेकर शासन तंत्र के सभी अंग एक दूसरे की हिफाजत के लिए खड़े हैं।

अधिकारियों की निलर्ज्जता

मुजफ्फरनगर के रामपुर तिराहा पर खाकी वर्दीधारियों द्वारा किये गये विभत्स काण्ड के बाद वहां के ताकालीन जिलाधिकारी अनन्त कुमार सिंह ने 'पायनियर' अखबार को दिये गये एक साक्षात्कार में निर्लज्जतापूर्वक कहा था कि "अगर एक औरत एकान्त स्थान में जायेगी तो कोई भी पुरुष उससे बलात्कार करेगा।"

11 साल बाद मुजफ्फरनगर की विशेष अदालत द्वारा बरी किये जाने के बाद अनन्तकुमार सहित पांचों अपराधी अधिकारियों के चेहरे पर मुस्कान थी और उन्होंने बड़े ही ढीठाई से इसे इंसाफ की जीत बताते हुए कहा कि "उन्होंने रामपुर तिराहे पर जो किया था, वह उनकी ड्यूटी का हिस्सा था।"

मुकदमे की पेचीदगी और सरकारों की भूमिका

इस वीभत्स घटना के बाद दायर मुकदमे में इलाहाबाद उच्च न्यायलय ने 9 फरवरी 1996 को दिये गये अपने महत्त्वपूर्ण फैसले में अनन्त कुमार सिंह सहित मुजफ्फरनगर के सभी सम्बन्धित अधिकारियों को दोषी ठहराया था और उनपर मुकदमा चलाने के लिए राज्य सरकार से अनुमति की कोई आवश्यकता नहीं बताई थी। लेकिन उच्चतम न्यायालय ने 13 मई 1999 को अपने फैसले में उच्च न्यायालय के फैसले को पलटते हुए 'सिस्टम' की पहरेदारी करते हुए सरकार से इजाजत लेने का पेंच फँसा दिया और जैसा कि होना था, उत्तर प्रदेश के तत्कालीन भाजपाई मुख्यमन्त्री राजनाथ सिंह ने इजाजत देने से इंकार कर दिया।

इधर उत्तरांचल राज्य के गठन के बाद नैनीताल उच्च न्यायालय की एक खण्डपीठ ने 22 जुलाई 2003 को अनन्त कुमार सहित सभी अपराधी अधिकारियों को बरी कर दिया था, जिससे जनान्दोलन के विस्फोट के बाद उच्च न्यायलय को अपना यह जन विरोधी फैसला वापस लेना पड़ा। बरी करने का फैसला उत्तरांचल की एन. डी. तिवारी की कांग्रेस सरकार की जानबूझकर की गयी ढिलाई का परिणाम था।

इधर निचली अदालत में यह मुद्दा इधर-उधर भटकाया जाता रहा। अन्त में इसे मुजफ्फरनगर की विशेष अदालत में चलाया गया। इसमें सी.बी.आई. की पैरवी कमजोर रही, उत्तरांचल की कांग्रेसी सरकार जानबूझकर ढिलाई देते रही, उत्तराखण्ड जन समिति की ओर से अधिवक्ता एस. एस. दास को कोर्ट में पैरवी की अनुमति नहीं दी और उत्तर प्रदेश की मुलायम सिंह सरकार द्वारा मुकदमा चलाने की अनुमति न देने के कारण सभी अपराधी अधिकारी बरी हो गये। इससे पूर्व इसी अदालत में 5 अगस्त, 2005 को पाँच अन्य अभियुक्तों को बरी किया जा चुका है। उल्लेखनीय है कि 11 वर्ष पूर्व घटित इस घटना के समय सपा-बसपा की सरकार थी और मुलायम सिंह यादव ही प्रदेश के मुख्यमन्त्री थे और केन्द्र में कांग्रेस की सरकार थी।

इस प्रकार इस पूरे मामले में न्यायपालिका से लेकर सपा, बसपा, कांग्रेस, भाजपा सभी की भूमिका जन विरोधी रही है।

अमेरिकी डॉलर का प्रभुत्व :

उदार व्यापार की असलियत

समूची दूनिया को राजनयिक तरीके सिखाने का दम भरने वाला संयुक्त राज्य अमेरिका यह करने का सम्बल कहाँ से प्राप्त करता है—अपने भारी-भरकम अत्याधुनिक सैन्य तन्त्र और उस पर होने वाले बड़े पैमाने पर अपव्यय तथा उसी सैन्य तन्त्र के उद्धत प्रयोग से। इसी प्रकार दुनिया के सभी देशों को आर्थिक अनुशासन, बेरोक टोक व्यापार और सन्तुलन बजट की सीख देने वाला तथा इसका अनुपालन न करने वालों को मुद्रा कोष-विश्वबैंक नामक डण्डों से पीटते रहने वाला अमेरिका आखिर अपने भारी-भरकम सैन्य तन्त्र के लिए संसाधन कहाँ से जुटाता है-आर्थिक कुशासन और बजट में भारी असन्तुलन से। अगर आप इस तर्क से सहमत नहीं हैं तो आपसे आग्रह करते हैं कि इस लेख को पूरा पढ़ें।

दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति तक अमेरिकी अर्थव्यवस्था इतनी ताकतवर हो चुकी थी कि डॉलर सोने के समतुल्य विश्व करेंसी बन गया। किन्तु 1971 में अमेरिका ने डॉलर की सोने से समतुल्यता समाप्त कर दी। किन्तु डॉलर का विश्व करेंसी के रूप में स्थान बना ही रहा। 1974 में जब अमेरिका ने सऊदी अरब से यह समझौता कर लिया तो तेल व्यापार डॉलरों द्वारा ही होगा तब विश्व के अधिकांश देश अपनी तेज जरूरतों के लिए तथा कमजोर अर्थव्यवस्थाएं अपनी मुद्रा की स्थिरता के लिए डॉलर संचय करने को बाध्य हो गए। नतीजतन तमाम देश अमेरिकी कागजी नोटों के बदले अपने माल निर्यात करते। जबकी यही नोट ट्रेजरी बाण्ड आदि में निवेश के लिए वापस अमेरिका आने लगे। अब चूकि डॉलर को स्थिर बनाए रखना सबके हित में था। अतः अमेरिका आसानी से अन्तर्राष्ट्रीय कर्ज ले सकता था। किन्तु इसी के ही फलस्वरूप अमेरिकी अर्थव्यवस्था में जो गिरावट आई वह आंखों से ओझल ही रही। 1970 में पूरे विश्व में भारी पूँजी निवेश का "दानी" अमेरिका 1990 दशक के आते-आते भिखारी (अत्यधिक कर्जदार) बन बैठा।

वर्ष 2004 तक अमरीकी व्यापार घाटा 503 अरब डॉलर, चालू खाते में घाटा 413 अरब डॉलर तथा सकल राष्ट्रीय कर्ज लगभग 7000 अरब डॉलर हो गया था। मैनुफैक्चरिंग उद्योग अमेरिका से लगभग पलायन कर गया है। अमेरिकी श्रेष्ठता केवल वित्तीय सेवाओं के क्षेत्र में ही रह गयी है। फ्राँसीसी वित्तीय विश्लेषक पियरे लेकोम्ते का कहना है—"जब समूची दुनिया खून-पसीना एक कर डॉलर कमाने में लगी है ताकि वह अन्तर्राष्ट्रीय बाजार से अपनी जरूरत का सामान खरीद सके या विदेशी कर्जों का भुगतान कर सके, अमेरिका को केवल डॉलर छापने की जरूरत पड़ती है।" इसलिए वे डॉलर के बहिष्कार का आह्वान करते हैं।

डॉलर के प्रभुत्व ने अमेरिकी साम्राज्य के रख-रखाव पर होने वाले खर्च को अमेरिकी नागरिकों से छिपा रख है। चूंकि मौजूदा तन्त्र में इस कीमत की अन्तिम अदायगी बाकी दुनिया करती है। अतः अमरीकी आम नागरिक यह नहीं जान पाता कि वर्ष 2006 के लिए अमेरिकी रक्षा बजट 420 अरब

(पेज 8 पर जारी)

लोग लोहे की दीवारों वाले मकान में कैद हैं

(पेज 11 का शेष)

है और न खिड़की या रोशनदान। वायु के लिए कोई मार्ग नहीं है। दीवारें बिल्कुल दुर्भेद्य हैं। मकान में बहुत से लोग बेसुध सोये हुए हैं। निश्चय ही वे लोग दम घुटकर मर जायेंगे। परन्तु बेसुधी से मरेंगे इसलिए उन्हें कोई कष्ट अनुभव नहीं होगा। तुम चीख-चिल्लाकर उन्हें जगाना चाहो तो संभव है कुछ एक की नींद उचट भी जाये। दम घुटने से उनकी मृत्यु निश्चित है। यदि कुछ अभागे जाग जायें और निश्चित मृत्यु की यातना अनुभव करें तो इससे उनका क्या भला होगा?"

"अगर कुछ की नींद उचट सकती है, तो यह कैसे कहा जा सकता है कि उस लौह-कारागार को तोड़ने की कोई आशा नहीं है?"

यह सच है कि मैं आशा छोड़ चुका था, परन्तु यह कैसे कह देता कि आशा थी ही नहीं! आशा तो भविष्य होती है, उसके विषय में कैसे इनकार कर देता? अपनी निराशा का उदाहरण देकर उसकी आशा पर कुठाराघात नहीं कर सका। मान लिया, लिखूँगा। परिणाम हुआ मेरी पहली कहानी "पागल की डायरी"। तब से लिखता ही गया। जब भी मित्र कहते, छोटी-मोटी कहानी लिख डालता। इस तरह बारह से अधिक कहानियाँ लिख डालीं।

जहां तक मेरा अपना सम्बन्ध है, अभिव्यक्ति की या कुछ लिखने की उमंग अब नहीं आती, परन्तु शायद अतीत में सहे हुए एकाकीपन के दुख को पूरी तरह भुला नहीं पाता। इसलिए जो साहसी और बाँकुरे सहयोग और सहायता की परवाह न कर एकाकीपन के बियावान में भी सरपट चले जा रहे हैं, उनका साहस बढ़ाने के लिए पुकार उठता हूँ कि वे बियावान से घबराकर हिम्मत न हार बैठें। मेरी इस पुकार में ललकार है अथवा क्रन्दन, वह घिनौनी है अथवा हास्यास्पद, इसकी मुझे चिन्ता नहीं। परन्तु यह ललकार जरूर है, इसलिए मुझे अपने सेनानी के आदेश पर चलना है। यही कारण है कि मैं अक्सर वक्रोक्ति का प्रयोग करता हूँ। उदाहरण के लिए, मैंने "औषधि" कहानी में बेटे की कब्र पर बिना किसी आधार के फूल रखे हुए दिखा दिये हैं और "कल" कहानी में यह स्पष्ट नहीं किया कि चौथे शान की पत्नी स्वप्न में अपने बेटे को देख पाई या नहीं, क्योंकि उन दिनों हमारे नेता निराशावाद के विरोधी थे। मैं स्वयं निराश और निरुत्साह की यातनाओं का अनुभव कर चुका था तथा उमंग और साहस भरे सुखदस्वप्न देखने वाले नवयुवकों के उत्साह पर तुषारापात नहीं करना चाहता था। ऐसे स्वप्न मैं अपने यौवन-काल में बहुत देख चुका था।

यह स्पष्ट है कि मेरी कहानियाँ कला की कसौटी पर खरी नहीं उतर सकेंगी। फिर भी यह मेरा सौभाग्य है कि लोग इन्हें कहानियाँ मान लेते हैं और इनका संग्रह भी प्रकाशित हो सका है। हालांकि मुझे अपने इस सौभाग्य पर स्वयं संकोच होता है, तो भी यह अच्छा लगता है कि कम से कम अभी तक लोग इन कहानियों को पढ़ना चाहते हैं।

अब मेरी कहानियाँ संग्रह के रूप में फिर से प्रकाशित हो रही हैं। उपर्युक्त परिस्थितियों को ध्यान में रखकर इस संग्रह के लिए मुझे "ना हान" (ललकार) ही उचित शीर्षक जँचता है।

3 दिसम्बर 1922, पीकिङ

---

* नानकिङ में च्याङनान नौसेना अकादमी।

** शाओशिङ।

*** तत्कालीन सांस्कृतिक क्रान्ति की एक अत्यन्त प्रभावशाली पत्रिका।

लोग लोहे की दीवारों वाले मकान में कैद हैं

लू शुन

(पहले कहानी-संग्रह 'ललकार' की भूमिका)

महान चीनी साहित्यकार लू शुन को माओ-त्से-तुङ ने 'चीन की सांस्कृतिक क्रान्ति' के कमाण्डर-इन-चीफ की संज्ञा दी थी। 4 मई, 1919 के नौजवान आन्दोलन ने चीनी क्रान्ति के हर मोर्चे पर युवा सेनानियों की एक पूरी कतार पैदा की थी। लू शुन भी क्रान्ति के सांस्कृतिक मोर्चे की एक ऐसे ही निर्भीक और जुझारू सेनापति थे। उन्होंने अपनी लेखनी की तीखी व्यंग्यात्मक धार से चीनी समाज में व्याप्त जड़ता, कूपमण्डूकता, दिमागी गुलामी और निराशा के अंधकार को तार-तार कर दिया। लू शुन की रचनाओं ने चीन के पढ़े-लिखे नौजवानों और संस्कृतिकर्मियों को झकझोरकर रख दिया। उन्होंने क्रान्ति के पक्षधर संस्कृतिकर्मियों को संगठित करने में नेता और पथ-प्रदर्शक की भूमिका निभायी और 1931 में वामपंथी लेखक लीग की स्थापना की। निबंध, कहानियों, व्यंग्य लेखों और आलोचनात्मक लेखों के लेखन के साथ ही बड़े पैमाने पर यूरोपीय और रूसी क्रान्तिकारी जनवादी एवं समाजवादी साहित्य का चीनी भाषा में अनुवाद करके लू शुन ने अपने बंद समाज में पूरी दुनिया की ओर खुलने वाली खिड़कियों का निर्माण किया। जनमानस तक क्रान्ति का सन्देश पहुँचाने में और क्रान्ति के सेनानियों की तैयारी में साहित्य-कला की भूमिका अनिवार्य होती है। क्रान्तियों के इतिहास की इस अपरिहार्य सच्चाई को लू शुन ने अपने कृतित्व के द्वारा एक बार फिर सत्यापित किया। आज जैसे कठिन समय में, हमारा समाज भी ऐसे ही सच्चे, क्रान्तिकारी कलाकारों-रचनाकारों की माँग कर रहा है। नकली वामपंथी, पाखण्डी, कैरियरवादी, विलासी, सत्ताधर्मी भारतीय लेखकों-कलाकारों से क्रान्ति के पक्ष में ईमानदारी से खड़े होने की उम्मीद पालना गीदड़ों-लोमड़ों से सिंहों जैसे व्यवहार की अपेक्षा करने के समान ही होगा। मजदूर क्रान्ति के सच्चे पक्षधर लेखकों को ही गोर्की और लू शुन जैसे लेखकों की विरासत को अपनाना और आगे बढ़ाना होगा।

चीनी क्रान्ति की 56वीं वर्षगाँठ के अवसर पर हम यहाँ लू शुन के पहले कहानी-संग्रह 'ललकार' की भूमिका प्रकाशित कर रहे हैं, इसमें लू शुन ने अपनी शैली की विशिष्ट सादगी-साफगोई के साथ बताया है कि गहन निराशा के दौर से उबरकर किस प्रकार वे लेखनी को हथियार बनाकर चीनी जनता की मुक्ति की लड़ाई में एक सांस्कृतिक सेनानी के रूप में सन्नद्ध हुए। – संपादक

लड़कपन था तो मेरे मन में भी बहुत से स्वप्न थे। उनमें से अधिकांश स्वप्नों को भूल चुका हूँ। इस बात के लिए मन में कोई मलाल नहीं है। हाँ, कभी अतीत की याद से सुख भी होता है, पर कभी वह स्मृति मन में एक सूनापन भी भर देती है। सूनेपन से भरे अतीत की बातों की याद करते रहने से लाभ भी क्या? पर मुसीबत यह है कि अतीत को पूरी तरह भूल भी तो नहीं पाता। जो कुछ भूल नहीं सका, उसी का परिणाम ये कहानियाँ हैं।

चार वर्ष से भी अधिक समय तक एक ऐसी अवस्था रही कि प्रायः प्रतिदिन ही कुछ न कुछ गिरवी रख आने के लिए महाजन के पास जाना पड़ता था और फिर दवाई की दुकान पर जाता था। ठीक-ठीक याद नहीं कि उस समय मेरी आयु कितनी थी; यह जरूर याद है कि दवाई की दुकान पर जाता तो मेरा सिर काउण्टर तक पहुँच जाता था और महाजन के यहाँ का काउण्टर मेरे शरीर से दूनी ऊँचाई पर था। उसके यहाँ जो कुछ भी कपड़ा-लत्ता या चीज-वस्त गिरवी रख आने के लिए ले जाता, उसे बाँह उठाकर महाजन के हाथ में देना होता। महाजन बड़े तिरस्कार के साथ जो कुछ दे देता, मैं ले लेता और दवा खरीदने चला जाता। दवाई की दुकान पर काउण्टर ऊँचा होने की कठिनाई नहीं थी। पिता काफी अरसे से बीमार थे। उनके लिए दवाई खरीदनी होती थी। घर लौटने पर करने को बहुत कुछ होता था। एक बड़े नामी हकीम पिता का इलाज कर रहे थे। वे बहुत विचित्र-विचित्र नुस्खे और दवाइयाँ तजवीज करते थे : जाड़े के मौसम में खोदी हुई घीकुंवार की जड़, तीन साल तक ओस-पाले में रखा हुआ गन्ना, झींगुर की जोड़ी, अजीब गंध और महक भरी जड़ी-बूटियाँ...ये औषधियाँ प्रायः दुष्प्राप्य होती थीं। परन्तु मेरे पिता का रोग बढ़ता ही गया और वे चल बसे।

मैं समझता हूँ सुख-समृद्धि के अच्छे दिन देख लेने के बाद जिन्हें दरिद्रता का जीवन बिताना पड़ता है वे संसार और समाज की वास्तविकता को खूब अच्छी तरह देख-परख सकते हैं। मैं चाहता था कि N– जाकर K– स्कूल में भरती हो जाऊँ। कारण शायद यह था कि मैं अपने यहाँ के माहौल से ऊब गया था और एक नए माहौल में जाना चाहता था। माँ विवश थीं। मेरी यात्रा के लिए आठ डालर जुटाकर मुझे अपने मन की कर लेने दें, इसके सिवाय उनके सामने कोई उपाय ग्रन्थों को पढ़कर सरकारी इम्तहान पास कर लेना ही सम्मानजनक समझा जाता था। जो कोई "विदेशी विषयों" को पढ़ता था, उसे हिकारत की नजर से देखा जाता था और यह समझा जाता था कि वह मजबूर होकर अपनी आत्मा विदेशी दरिन्दों को बेच चुका है। इस पर माँ को मेरे बिछोह का भी दुख था। जो हो, मैं N– चला ही गया और K– स्कूल में दाखिल भी हो गया। वहां जाकर पहली बार मालूम हुआ कि प्राकृतिक-विज्ञान, अंक-गणित, भूगोल, इतिहास, ड्राइंग और शारीरिक व्यायाम आदि विद्याओं का भी अस्तित्व है। स्कूल में शरीर-विज्ञान की शिक्षा नहीं दी जाती थी, परन्तु "मानव-शरीर-रचना का नया कोर्स" और "रसायन-विज्ञान तथा स्वास्थ्य-रक्षा पर लेख" जैसी रचनाएं, जो लकड़ी के ब्लाकों से छपी होती थीं, हमारे हाथों में पड़ ही जाया करती थी। उससे पूर्व सुनी वैद्यों ओर हकीमों की बातों और उनके नुस्खों को याद करके तथा नई पढ़ी पुस्तकों से उनकी तुलना करके मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि वे लोग या तो अज्ञानी लाल-बुझक्कड़ थे अथवा धूर्त थे। ऐसे हकीम-वैद्यों के हाथ पड़ने वाले रोगियों और उनके परिवारों पर मुझे दया आती। इतिहास की पुस्तकों के कुछ अनुवाद भी पढ़े। मालूम हुआ कि जापान में भी सुश्रारों का आरम्भ बहुत हद तक उस देश में पश्चिमी चिकित्सा-शास्त्र का परिचय पहुँचने से ही हुआ।

इन विचारों से प्रभावित होकर मैं जापान चला गया और एक प्रान्तीय मेडिकल कालेज में भर्ती हो गया। उस समय कल्पना थी कि चीन में मेरे पिता की ही तरह लाखों अभागे ऐसे हैं जो उचित इलाज नहीं पा रहे। लौटकर उनका उचित इलाज कर सकूंगा। यदि युद्ध आरम्भ हो गया तो सेना में डाक्टर के रूप में सेवा कर सकूँगा और साथ ही अपने देशवासियों में सुधार की प्रेरणा का प्रचार करने का यत्न करता रहूँगा।

नहीं मालूम कि आजकल चिकित्सा-शास्त्र के स्कूल-कालेजों में सूक्ष्म-जीव विज्ञान पढ़ाने के लिए किस प्रकार के नये-नये साधन उपयोग में लाये जा रहे हैं। जब मैं चिकित्सा-विज्ञान पढ़ रहा था तो सूक्ष्म-जीवों का परिचय विद्यार्थियों को लालटेन-स्लाइडें दिखाकर दिया जाता था। कभी व्याख्यान समय से पहले समाप्त हो जाता तो अध्यापक समय पूरा करने के लिए प्राकृतिक दृश्यों अथवा समाचारों की स्लाइडें दिखा देते थे। उन दिनों रूस-जापान युद्ध चल रहा था, इसलिए युद्ध की फिल्में काफी आती रहती थीं। मुझे भी दूसरे विद्यार्थियों के साथ बड़े उत्साह से लेक्चर-हाल में तालियां बजानी पड़ती थीं और हर्षनाद करना पड़ता था। बहुत दिन से अपने किसी देशवासी को नहीं देखा था। एक दिन एक फिल्म में कुछ चीनी दिखाई दिये। एक चीनी की मुश्कें बँधी हुई थीं और दूसरे कई चीनी उसे घेरे हुए खड़े थे। ये लोग काफी तगड़े जवान थे, परन्तु उनके चेहरे बिल्कुल भावशून्य नजर आ रहे थे। बताया गया कि मुश्कें बंधे चीनी पर रूसियों का जासूस होने का आरोप था। जापानी सैनिक इस चीनी की गर्दन काटने के लिए उसे मैदान में लाये थे। यह दण्ड दूसरे चीनियों को चेतावनी देने के लिए मैदान में दिया जा रहा था, जबकि बाकी चीनी यह तमाशा देखने के लिए आ जुटे थे।

शिक्षा-सत्र समाप्त होने से पहले ही मैं टोकियो चला गया, क्योंकि उक्त घटना के बाद मुझे लगा चिकित्सा-विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करना इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है। पिछड़े हुए और निर्बल राष्ट्र के लोगों के शरीर चाहे कितने ही बलवान और स्वस्थ क्यों न हों, उनका उपयोग दण्ड देने के लिए अथवा दण्ड देने का तमाशा देखने के लिए ही किया जा सकता है; अगर ऐसे लोग रोग से घुल-घुल कर मर भी जायें, तो भी कोई अधिक दुखदाई बात नहीं। सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो है लोगों की भावना को बदलना। तब यही जान पड़ा कि इस प्रयोजन के लिए साहित्य ही सबसे अधिक उपयोगी हो सकता है। इस विचार से मैंने एक साहित्यिक आन्दोलन आरम्भ करने का निश्चय कर लिया। उस समय टोकियो में बहुत से चीनी विद्यार्थी थे। वे कानून, राजनीति-शास्त्र, भौतिक-विज्ञान और रसायन-शास्त्र पढ़ रहे थे, कुछ पुलिस के काम की अथवा इंजीनियरिंग की शिक्षा भी ले रहे थे, परन्तु साहित्य और कला का अध्ययन कोई भी नहीं कर रहा था। इस प्रतिकूल परिस्थिति में भी भाग्यवश मुझे अपनी भावना से सहमत कुछ लोग मिल गये। हमने कुछ और लोगों को भी, जिनकी हमें जरूरत थी, अपने साथ मिला लिया और आपस में विचार-विमर्श करने के बाद एक पत्रिका आरम्भ करने का निश्चय कर लिया। सोचा, पत्रिका के नाम से नये जीवन का बोध होना चाहिए। उस समय हमें लोगों की साहित्यिक रुचि में प्राचीनता के प्रति झुकाव था, इसलिए पत्रिका का नाम रखा गया "शिन शङ" (नवजीवन)।

जब इस पत्रिका को छपवाने का समय आया तो हमारे कई सहयोगी खिसक गये। जो धनराशि हमने जमा की थी वह भी कम हो गई। अन्ततः हम तीन ही ऐसे साथी रह गये जिनके पास पैसा-वैसा बिल्कुल नहीं था। पत्रिका का आरम्भ ही कुछ अशुभ घड़ी में हुआ था, अपनी असफलता के लिए भला किसे दोष देते। कुछ दिन बाद किस्मत ने हम तीनों को भी एक साथ नहीं रहने दिया। हमारे भावी सपने साकार नहीं हो सके और "नवजीवन" के प्रकाशन के प्रयत्न गर्भ में ही समाप्त हो गये।

कुछ समय बीतने के बाद ही मुझे अपने उत्साह की निस्सारता अनुभव होने लगी; इससे पहले दरअसल मैं कुछ नहीं समझ पाता था। बाद में यह बात समझ में आने लगी कि लोग हमारे प्रयत्न का समर्थन करें तो उत्साह पाना स्वाभाविक ही है। यदि लोग हमारे विचार का विरोध करें तो हम उनसे लोहा लेने के लिए आगे बढ़ सकते हैं। परन्तु जब हम समाज में कोई बात उठायें और लोग न उसका समर्थन करें न विरोध ही करें, चारों ओर उपेक्षा ही हो, तो आदमी क्या करे? तब ऐसा लगता है मानो हम किसी निस्सीम बियाबान में खड़े व्यर्थ ही चिल्ला रहे हों, कुछ कर सकने का कोई उपाय न हो। मैं अपने आपको निस्सहाय अनुभव करने लगता।

एकाकीपन की यातना दिन पर दिन बढ़ती ही गई। लगता था एकाकीपन का विषैला अजगर मुझे चारों ओर से जकड़ता जा रहा है। मन पर भारी बोझ था, पर क्रोध किस पर करता, क्योंकि इस अनुभव से मैंने यह देख लिया था कि मुझमें शौर्य का अभाव है, अपनी पुकार पर असंख्य लोगों को गोलबन्द कर सकने की क्षमता का अभाव है। एकाकीपन की यह अनुभूति मुझे बहुत यातना दे रही थी, इसलिए इससे मुक्ति पाना मेरे लिए आवश्यक था। किसी बात की चिन्ता न करने और अपने आपको भुला देने के बहुत यत्न किये। कभी अपने आपको सामयिक परिस्थिति के अनुकूल बना लेना चाहा, कभी अपने राष्ट्र के अतीत में खो जाना चाहा। बाद में मुझे और भी अधिक एकाकीपन और सूनापन अनुभव होने लगा। उन सबको याद करने से क्या लाभ, बेहतर यही होगा कि ये स्मृतियाँ मेरे ही साथ काल के मुँह में चली जायें। फिर भी मन के उस बोझ को भुला देने का प्रयत्न असफल न रहा–मैं यौवन के उत्साह और स्फूर्ति से वंचित हो चुका था।

S–"होस्टल में तीन कोठरियाँ थीं। आंगन में एक बबूल का पेड़ था। लोग कहते थे कि उस मकान में कोई औरत रहती थी, जो आंगन के पेड़ की डाल से फाँसी लगाकर मर गई थी। अब पेड़ इतना ऊँचा हो गया था कि उसकी डालियों को छू पाना आसान नहीं था। मगर मकान खाली पड़ा था। कुछ वर्षों तक मैं इसी मकान में रहा और पुराने शिलालेखों की प्रतिलिपियाँ बनाता रहा। बहुत कम लोग मुझसे मिलने आते। उन पुराने शिलालेखों में राजनीतिक समस्याओं अथवा मामलों का कोई प्रसंग नहीं हो सकता था। बस यही इच्छा थी कि शेष जीवन इसी प्रकार चुपचाप बीत जाए। गर्मियों में रात के समय इतने मच्छर हो जाते कि उनसे बचने के लिए एक पंखा हाथ में लेकर बबूल के पेड़ के नीचे बैठ जाता, और घने पेड़ के बीच से जहाँ-तहाँ दिखाई देते आकाश की ओर टकटकी लगाये रहता। पेड़ की डालियों और पत्तियों से बर्फ जैसी ठण्डी सुंडियाँ सहसा मेरी गर्दन पर टपक पड़ती थीं।

चिन शिन-ई, जो मेरा पुराना मित्र था, कभी-कभी मिलने या बातचीत करने आ जाता। चिन आता तो अपना बड़ा-सा बस्ता टूटी मेज पर रख देता और अपना लम्बा चोगा उतारकर मेरे सामने बैठ जाता। पीछा करते कुत्तों के भय से उसकी साँस उखड़ी-उखड़ी लगती थी।

एक दिन शाम के वक्त पुराने शिलालेखों की मेरी बनाई प्रतिलिपियों को देखकर चिन कौतूहलवश पूछ बैठा, "ये प्रतिलिपियाँ बनाने से लाभ क्या है?"

"कुछ भी नहीं।"

"तो फिर इसमें समय क्यों बर्बाद करते हो?"

"समय काटने के लिए।"

"इससे तो अच्छा है तुम स्वयं कुछ लिखो... ।"

चिन का अभिप्राय मैं समझ गया। वह कुछ लोगों के साथ मिलकर एक पत्रिका "नया नौजवान"* निकाल रहा था। पत्रिका की ओर लोगों ने विशेष ध्यान नहीं दिया था, न उसका समर्थन किया था न विरोध। मुझे लगा कि वे लोग भी एकाकीपन अनुभव कर रहे हैं, सहयोग चाहते हैं। कुछ सोचकर मैंने कहा :

"कल्पना करो, लोहे की मोटी दीवारों वाला मकान है। न कोई दरवाजा

(पेज 10 पर जारी)

पंजीयन संख्या - 71980/99, डाक पंजीयन संख्या - LW-NP/349/2003-05

स्मृति संकल्प यात्रा का शुरुआत का ऐलान

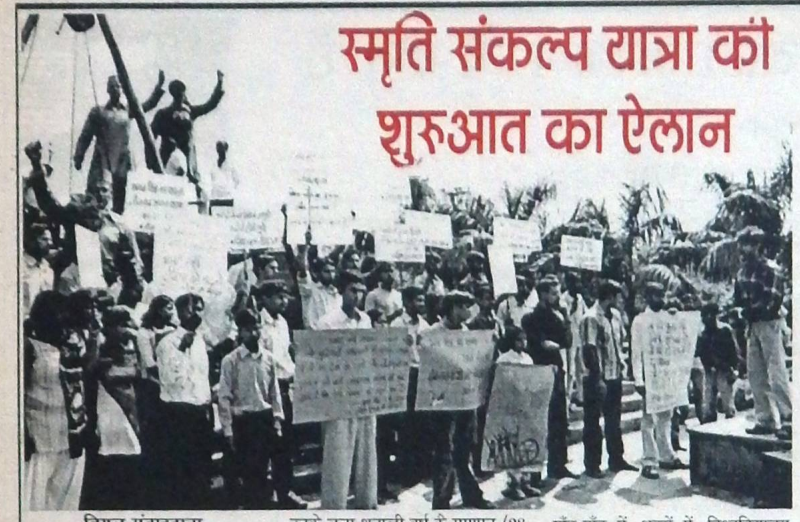

बिगुल संवाददाता

शहीदेआज़म भगतसिंह के 98वें जन्मदिवस के अवसर पर 28 सितम्बर, 2005 के दिन शहीद पार्क, फ़िरोज़शाह कोटला के ऐतिहासिक स्थान पर **नौजवान भारत सभा** और **दिशा छात्र संगठन** ने संकल्प दिवस मनाते हुए देश भर में भगतसिंह और उनके साथियों के क्रान्तिकारी विचारों को प्रचारित- प्रसारित करने की शपथ ली। यह स्मृति संकल्प यात्रा भगतसिंह के 75वें शहादत वर्ष के आरम्भ (23 मार्च, 2005) से लेकर उनके जन्म शताब्दी वर्ष के समापन (28 सितम्बर, 2008) तक के तीन वर्षों के दौरान देश भर में साईकिल यात्राएँ, पद यात्राएँ और जुलूस निकालने के साथ-साथ सांस्कृतिक टोलियों के देशव्यापी दौरों और विश्वविद्यालय परिसरों में भगतसिंह के विचारों पर गोष्ठियों, विचार-विमर्श चक्रों को आयोजित करेगी। इस दौरान भगतसिंह और उनके साथियों के दस्तावेज़ों और अन्य क्रान्तिकारी साहित्य को पर्चों, पुस्तिकाओं और पुस्तकों के माध्यम से गाँव-गाँव में, शहरों में, विश्वविद्यालय परिसरों और कॉलेजों में, कारखानों और मज़दूर बस्तियों में पहुँचाया जाएगा।

दिल्ली, ग़ाज़ियाबाद और नोएडा के छात्रों और युवाओं की टोलियों ने शहीदों की प्रतिमा के समक्ष संकल्प लिया कि अगले तीन वर्षों के दौरान छात्र-युवा देश भर में क्रान्ति के सन्देश को पहुँचाने में कोई कसर नहीं छोड़ेंगे और एक नए क्रान्तिकारी नवजागरण का सूत्रपात करने के लिए देश की आम मेहनतकश जनता को जगाएँगे।

इराक : बर्बादी के बीच जारी अमेरिकी कम्पनियों की घिनौनी लूट

युद्ध की विनाशलीला और इन्सानियत के हाहाकार के बीच पूँजी के गिद्ध इन दिनों इराक में जबरदस्त लूटखसोट में लगे हैं। अमेरिकी कम्पनी हेलीबर्टन के लिए भी इराक युद्ध वैसा ही वरदान साबित हुआ है, जैसा अन्य साम्राज्यवादी कम्पनियों के लिए।

हेलीबर्टन कम्पनी की केबीआर डिवीजन ने इस वर्ष की तिमाही में अपने लाभ में 284 फीसदी की बढ़ोत्तरी की। केबीआर डिवीजन अमेरिकी रक्षा मन्त्रालय के ठेके लेती है।

हेलीबर्टन वही कम्पनी है, जिसका कर्ता-धर्ता उपराष्ट्रपति बनने से पहले, डिक चेनी हुआ करता था। अमेरिकी रक्षा मन्त्रालय पेण्टागन ने तमाम घपले घोटालों के बावजूद हेलीबर्टन कम्पनी को मध्य एशिया में "अच्छे काम" के लिए पुरस्कृत किया है। उसे 7 करोड़ डॉलर पुरस्कार राशि के रूप में दिये गये और समय-समय पर विशेष सहूलियतें दी गईं। यह सब ऑडिट एजेन्सी की विपरीत टिप्पणियों को अनदेखा करते हुए हुआ।

ऑडिट एजेन्सी ने केबीआर डिवीजन के 10 करोड़ डॉलर के खर्च पर सवालिया निशान लगाया और कहा कि इसको खर्च करने के पर्याप्त कारण नहीं है। इसके साथ ही ऑडिटर ने करीब साढ़े चार करोड़ डॉलर राशि के खर्च में यह पाया कि इस खर्च की न तो कोई रसीदें हैं और न ही जरूरी स्पष्टीकरण कि इस भारी-भरकम रकम का इस्तेमाल किस रूप में हुआ।

ये तथ्य यह साफ कर देते हैं कि किस धोखाधड़ी और अन्धेरगर्दी के साथ तमाम अमेरिकी कम्पनियाँ इराक युद्ध के दौरान और आज भी लूट-खसोट में लगी हैं। इनका साइनबोर्ड जितना चमकदार और साफसुथरा है, इनके कारनामे उतने ही गन्दे और घिनौने हैं।

इसी सम्बन्ध में अमेरिकी न्यायपालिका ने यह फैसला दिया जो पूँजीवादी न्यायपालिका के असली चरित्र के अनुरूप ही है। फैसले में कहा गया कि यदि किसी कम्पनी को किन्हीं सेवाओं के लिए इराकी मुद्रा में भुगतान किया जाता है और उस कम्पनी का दावा (क्लेम) झूठा भी है तो उस पर मुकदमा नहीं ठोंका जा सकता। यानी दूसरे देश में छुट्टे साँड की तरह मनमर्जी की खुली छूट। यह है युद्ध की विभीषिका के बीच अट्टहास करते पूँजी के राक्षस का चेहरा।

कैटरीना ने बेनकाब किया पूँजीवाद का जनद्रोही चेहरा

पिछले दिनों अमेरिका के लूसियाना राज्य में आये तूफान कैटरीना ने मार्क्स के इस वचन को सही सिद्ध कर दिया है कि पूँजीवादी तंत्र न सिर्फ दूसरे राष्ट्रों की जनता का शोषण-उत्पीड़न करता है बल्कि अपने देश की जनता के प्रति भी उसका रवैया उतना ही निष्ठुर और बर्बर होता है। दुनिया के सबसे अधिक शक्तिशाली और सम्पन्न देश के अन्दर लोगों की जो स्थिति एक प्राकृतिक आपदा के द्वारा दुनिया के सामने प्रकट हो गई वह न सिर्फ पूँजीवाद का विकृत रूप हमारे सामने पेश करती है बल्कि यह सिद्ध करती है कि पूँजीवाद का स्वरूप दुनिया के हर कोने में उतना ही घृणित और जन-विरोधी होता है। पूँजीवाद के कूड़ेदान पर चाहे कितना भी रंग-रोगन किया जाये उसके अन्दर वीभत्स गन्दगी सड़कर बजबजाती रहेगी और कूड़ेदान का ढक्कन उठाकर बाहर आती ही रहेगी।

उन्नत तकनीक मौजूद होने और तूफान की समय रहते भविष्यवाणी हो जाने के बावजूद न्यू ऑर्लियन्स शहर में मची भीषण तबाही अमेरिका में सत्तासीन पूँजीपति वर्ग की आपराधिक संवेदनहीनता की गवाह है। भौगोलिक स्थिति की दृष्टि से न्यू ऑर्लियन्स शहर पर हमेशा तूफानों का खतरा मँडराता रहता है और इसलिए वहाँ इसके रोकथाम की तैयारियों की विशेष दरकार रहती है। इसके लिए कोष भी बनाया गया है। मगर बुश सरकार ने आतंकवाद और इराक के खिलाफ युद्ध में इस कोष का धन भी फूँक दिया। पिछले कुछ वर्षों से तूफान से सुरक्षा के लिए बनाये गये तटबन्धों को मजबूत नहीं किया गया था। समस्या यह नहीं थी कि तटबन्ध मजबूत नहीं हो सकते थे, समस्या यह थी कि ऐसा करने के लिए कोष में पर्याप्त धन नहीं था क्योंकि बुश प्रशासन ने सारा धन अपनी साम्राज्यवादी नीतियों के मद के हवाले कर दिया था। कई दिन पहले तूफान की भविष्यवाणी हो जाने के बावजूद सरकार ने लोगों को शहर से सुरक्षित बाहर निकालने की कोई व्यवस्था नहीं की और न ही उनके रहने-खाने का

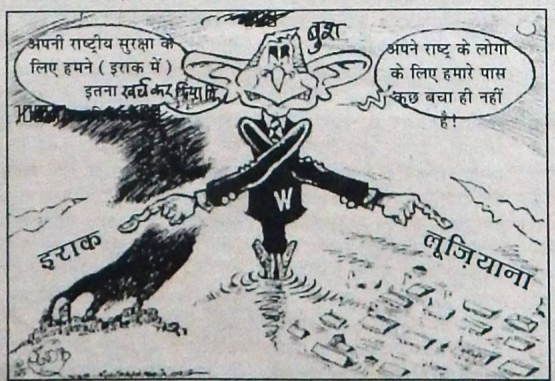

कोई इन्तजाम था। अमीर लोग गाड़ियों में सामान ठूँस कर राजमार्गों से होते हुए शहर के बाहर निकल गये लेकिन गरीबों के लिए न तो शहर से निकलने की कोई व्यवस्था थी और न ही उनकी सुरक्षा का कोई इन्तजाम था। राष्ट्रपति बुश अपने विशाल फार्म पर छुट्टियाँ मना रहा था। तटरक्षक बल का बड़ा हिस्सा इराक युद्ध में झोंक दिया गया था। यह तूफान से पहले की स्थिति थी। उसके बाद की स्थिति का बयान करने से पहले न्यू ऑर्लियन्स शहर की आबादी पर एक नजर डाल लेते हैं। शहर की आबादी लगभग पाँच लाख है। 84 प्रतिशत लोग अफ्रीकी व लातिनी मूल के हैं। 28 प्रतिशत लोग राज्य की गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन कर रहे थे (तूफान आने के पहले) और शहर की आबादी के लगभग 24 प्रतिशत लोग शारीरिक रूप से असहाय थे। न्यू ऑर्लियन्स के एक बाशिन्दे ने बताया कि शहर न छोड़ सकने वाले लोगों को सरकार ने उनके हाल पर छोड़ दिया। लोगों को खेल के स्टेडियम में शरण लेने को कहा गया जहाँ खाना-पानी और चिकित्सा की कोई व्यवस्था नहीं थी। जाहिर है इनमें अधिकांश लोग अफ्रीकी और लातिनी मूल के थे। गुलामी के दिनों से काले लोग शहर की दलदली और गन्दी बस्तियों में रहते आये हैं। इनमें से ज्यादातर निम्नस्तरीय सरकारी घरों में रहते हैं और 1990 के बाद से सरकार उन्हें वहाँ से भी निकाल भगाने की कोशिश करती आ रही है।

29 अगस्त को 249 किमी प्रति घण्टे की रफ्तार से तूफान ने न्यू ऑर्लियन्स पर धावा बोला। शहर के अनेक हिस्से बुरी तरह तूफान की चपेट में आ गये और कई हफ्तों तक पानी में डूबे रहे। समुचित तैयारी न होने और सरकारी तंत्र की प्रत्यक्ष लापरवाही ने स्थिति को और भयानक बना दिया। लोग कई दिनों तक भूख-प्यास से तड़पते हुए राहत का इन्तजार करते रहे। अधिकारी लोगों को झूठा दिलासा देते रहे। यहाँ तक कि मीडिया में भी वे स्थिति नियंत्रण में होने और खाना-पानी तथा दवा-इलाज की समुचित व्यवस्था होने का दावा करते रहे। फिर धीरे-धीरे लोगों का सब्र जवाब देने लगा। मजबूरी में उन्हें सड़क पर उतरना पड़ा। लूटपाट, कत्ल, और बलात्कार के कई मामले उजागर हुए। हालाँकि इनकी संख्या असल में उतनी नहीं थी जितनी सरकार ने बतायी। अस्तित्व का संकट आने पर लोग निश्चित ही बेकाबू हो गये थे। लेकिन फिर भी आपसी सहयोग और साझेदारी की कई मिसालें भी जनता ने कायम की। वहीं दूसरी तरफ लोगों से सहानुभूति दिखाने के बजाय सरकार दमन पर उतर आयी। लोगों को राहत पहुँचाने के बजाय सुरक्षा बलों को बन्दूक उठाने के लिए कहा गया। देखते ही गोली मारने के आदेश जारी कर दिये गये। राहत सामग्री बाँटने के समय लोगों का पिछला इतिहास देखा गया और पुराने हिसाब चुकता किये गये। इन परिस्थितियों में यह बेहद शर्मनाक था। संयुक्त राज्य नागरिक अधिकार आयोग की भूतपूर्व अध्यक्ष लिण्डा चावेज ने इस दौरान कहा कि यहाँ ऐसे लोगों की बात की जा रही है जो हमेशा से गरीब रहे हैं जिनके पास नौकरियाँ नहीं हैं, जो आगे बढ़कर संगठित होकर स्वयं की पहलकदमी से कुछ भी नहीं करते बल्कि जिनके लिए हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना और इन्तजार करना जीने का तरीका है। जाहिर है यह गरीब असहाय काली आबादी के बारे में व्यक्त किये गये रंगभेदी उद्गार हैं। और यह भी स्पष्ट है कि इन नीतियों का सबसे ज्यादा असर इसी नस्ल के लोगों पर पड़ा। कहाँ तो जिन्दगी और मौत के बीच झूलते लोग और कहाँ यह इन्सान विरोधी भावना।

लॉस एजेंल्स टाइम्स में प्रोफेसर रोजा ब्रुक्स ने ठीक ही लिखा है कि आज दो अमरीका हैं : एक वह पहली दुनिया है जिसके पास धन और विलासिता की कमी नहीं और दूसरी वह तीसरी दुनिया है जिसपर किसी का ध्यान नहीं जाता। प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर कार्नेल वेस्ट ने लिखा है कि न्यू ऑर्लियन्स तूफान आने के पहले से ही तीसरी दुनिया का शहर था। यहाँ के लोग अमेरिका की निर्वासित आबादी थी। छतों पर फँसे हुए और सड़क किनारे दम तोड़ते लगभग सभी लोग काले थे।

सरकार के साथ ही पूँजीवादी मीडिया का चरित्र भी संदेहास्पद रहा। जहाँ लूटपाट करने वाले गोरे लोगों की विवशता पर रहम खाया गया वहीं काले लोगों को अपराधी बताया गया। अपने द्वारा ही चुनी सरकार की संवेदनहीनता से लोग हतप्रभ और आक्रोशित थे।

असल में पूँजीवादी जनतंत्र एक छलावा है जिसमें पूँजीपतियों के नुमाइन्दों को जनता अपना हितैषी समझ बैठती है। तभी तो यह होता है कि भले ही शहर के सुरक्षा कोष का धन हड़प लिया गया हो, जनता पर टैक्सों का बोझ बढ़ा दिया गया हो, सैन्य दस्तों को नागरिक सुरक्षा की बजाय साम्राज्यवादी युद्ध में झोंक दिया गया हो और इस बर्बादी के

(पेज 8 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंगः कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ। सम्पादकः डा. दूधनाथ, मुकुल • सम्पादकीय पताः 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 • सम्पादकीय उपकार्यालयः जनगण होम्यो सेवासदन, मवांदपुर, मऊ